Fortnightly per copy Rs. 12/-

ओ३म्

03rd January 2024

आर्य जीवन

ఆర్య జీవన్

संस्कृति संरक्षण व सामाजिक परिवर्तन का संकल्प

హిందీ-తెలుగు ద్విభాషా పక్ష పత్రిక

Website : http://www.aryasabhaapts.org

Narendra Bhavan Telephone : 040 24760030

Date of Publication 2nd and 17th of every Month, Date of Posting 3rd and 18th of every Month

आर्य प्रतिनिधि सभा आ.प्र.-तेलंगाना के

प्रो. विट्ठल राव आर्य सर्वसम्मति से

पुनः प्रधान निर्वाचित

श्री हरिकिशनजी वेदालंकार सर्वसम्मति से मन्त्री निर्वाचित

वेद आग्रही स्वामी दयानन्द सरस्वती

-स्व.प्रो. उमाकान्त उपाध्याय

स्वामी दयानन्द का जन्म फाल्गुनी कृष्ण दशमी सं. १८८१ वि. सन १८२४ ई. को सौराष्ट्र (गुजरात) टंकारा, मौरवी में हुआ था। इनके पिताजी सामवेदी ब्राह्मण थे। वे निष्ठावान शिव भगवान् के भक्त थे। उन्होंने अपने पुत्र का नाम ''मूलशंकर'' रखा था। मूलशंकर को यजुर्वेद की रूद्राष्टाध्यायी कंठस्थ करा दी थी। कर्षण जी अपने पुत्र मूलशंकर को १४ वर्ष की आयु में पूर्ण श्रद्धा भक्ति के साथ शिवरात्रि का व्रत रखवाया। रात्रि जागरण का विशेष फलदायक महत्व है। निद्रा देवी ने सबको दबा लिया। सिर्फ मूलशंकर पूरी श्रद्धा भक्ति से जागते रहे। इतने में दो-चार चूहे पिन्डी पर अर्पित सामग्री को खाने लगे। मूलशंकर के हृदय में प्रभु-कृपा से सत्यका प्रकाश हुआ। उन्हें दृढ़ विश्वास होगया कि यह पिण्डी भगवान् शंकर नहीं हो सकती। सत्य के प्रति आग्रही मूलशंकर घर आ गए। सत्य के प्रति यह परम दुर्दान्त आग्रह स्वामी दयानन्द से सम्पूर्ण जीवन से बड़ी दृढ़ता से बना रहा।

स्वामी दयानन्द ने अपने युगान्तरकारी कालययी ग्रन्थ ''सत्यार्थ प्रकाश'' की भूमिका में लिखा है ''मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य का जानने हारा है, तथापि प्रयोजन की सिद्धि, हठ, दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से सत्य को छोड़ असत्य पर झुका जाता है'' स्वामीजी ने वहीं भूमिका के पुनः लिखा है- ''विद्वान् आप्तों का यही मुख्य काम है कि उपदेश वा लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने सत्यासत्य का स्वरूप समर्पित कर देना, पश्चात् मनुष्य लोग स्वयं अपना हिताहित समझकर सत्यार्थ का ग्रहण और मिथ्यार्थ का परित्याग करके सदा आनन्द में रहें, ''वहीं पुनः लिखते हैं- ''यद्यपि आजकल बहुत से विद्वान् प्रत्येक मतों में हैं, वे पक्षपात छोड़कर सर्वतन्त्र सिद्धान्त अर्थात् जो-जो बातें सबके अनुकूल सब में सत्य हैं, उनका ग्रहण और जो एक-दूसरे के विरूद्ध बातें हैं, उनका त्याग परस्पर प्रीति से वर्ते वर्तावें तो जगत का पूर्ण हित होवे। क्योंकि विद्वानों के विरोध से अविद्वानों में विरोध बढ़कर अनेकाविधि दुःख की वृद्धि और सुख की हानि होती है'' यह उद्धरण किसी समीक्षा या व्याख्या की आकांक्षा नहीं करते।

स्वामी दयानन्द सत्य के प्रति इतने अग्रहवान थे कि उन्होंने आर्य समाज का चौथा नियम यह बनाया कि ''सत्य के ग्रहणकरने और असत्य को छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।'' स्वामी जी ने पुनः पान्चवे नियम में यह व्यवस्था दी है कि ''सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिए।''

सत्य और न्याय एक-दूसरे के साथी हैं, जहाँ सत्य का पालन होगा वहां न्याय स्वतः होता रहेगा। जिस युग में स्वामी जी ने अपना प्रचार कार्य आरम्भ किया उस समय कई प्रकार के अन्याय समाज में परिवारों में प्रचलित हो गए थे। सामाजिक रूप में छुआ-छूत भयानक रूप से चल रहा था। परिवारों में स्त्रियों की स्थिति बहुत दयनीय हो गई थी। उनके साथ प्रायः दासियों जैसा व्यवहार होता था। स्त्री और शूद्रों को पढ़ने का अधिकार नहीं था। स्वामी दयानन्द ने बड़े क्षोभ और उग्रता से इस अन्याय का विरोध किया।लड़कियों के लिए पाठशाला की व्यवस्था की और अछूतों के लिए छुआ-छूत के भेद भाव दूर कर दिए और उनके लिए भी पढ़ने की व्यवस्था की।

उस युग में बाल-विवाह बहुत प्रचलित था। आठ-दस वर्ष की लड़कियां भी बूढों और अधेड़ों को ब्याह दी जाती थीं। विधवाओं की संख्या बहुत अधिक थी और विधवा-विवाह धर्म-विरूद्ध माना जाता था। ये बाल-विधवाएं या तो वेश्या बन जाती थीं या देवदासियां बन जाती थीं। स्वामी दयानन्द ने इन सभी अन्यायों का डटकर विरोध किया। आर्य समाज ने अपने मन्दिरों से छुआ-छूत को हटाया और बाल-विवाह के विरूद्ध सामाजिक आन्दोलन किया। हिन्दू समाज में विधवा विवाह आरम्भ हो गया। प्रत्येक आर्य समाज के विद्यालयों और छात्रावासों में बिना किसी रोक-टोक के खुल गई। अछूतों को आर्य समाज के कार्यकर्ताओं को सामाजिक बहिष्कार का दण्ड भी भोगना पड़ा किन्तु स्वामी दयानन्द की शिक्षाओं के फलस्वरूप ये सामाजिक आन्दोलन बढ़ता हीगया और छुआ-छूत मिटने लगा तथा स्त्रियों को भी पुरूषों की तरह सामाजिक अधिकार मिलने लगे। उन्हें सब प्रकार से उन्नति का अवसर सुलभ हो गया।

संस्कृत और हिन्दी की शिक्षा की बड़ी उपेक्षा हो रही थी। सम्पन्न लोग उर्दू और फारसी पढ़ रहे थे। स्वामी दयानन्द ने अपने संगठन में सारे कामों की हिन्दी में करने का अनिवार्य नियम बना दिया।

स्वामी दयानन्द के इस प्रचार का परिणाम यह हुआ कि अछूत कुलों के विद्यार्थी भी बड़े-बड़े विद्वान, आचार्य, वेदपाठी, अध्यापक बनाने लगे और बिना किसी भेद-भाव के पण्डितों की मण्डली में प्रतिष्ठित होने लगे। स्त्रियाँ भी संस्कृत और वेद की उच्चकोटि की विदुषी बनने लगी वर्तमान में राजनीतिक दलों ने अपने निहित राजनीतिक स्वार्थों के कारण स्वामी जी की छुआ छूत जातिवाद को समाप्त करने की भावना को खत्म करने को खूब बढ़ावा दिया। अबतो ऐसा लगने लगा है कि अछूत जनजाति, अनुसूचित जाति, पिछड़ा वर्ग, सभी को राष्ट्र की एकता के

-शेष पृ. ५ पर

सनातन अर्थात वैदिक धर्म की विशेषताएं

-डॉ. भवानीलाल भारतीय

वेदिक धर्म संसार के सभी मतों और सम्प्रदायों का उसी प्रकार आदार है जिस प्रकार संसार की सभी भाषाओं का आधर संस्कृत भाषा है जो सृष्टि के प्रारम्भ से अर्थात् १,९६,०८,५३,१२१ वर्ष से अभी तक अस्तित्व में है । संसार भर के अन्य मत, पन्थ किसी पीरबैगम्बर, मसीहागुरु, महात्मा आदि द्वारा चलाए गए हैं, किन्तु चारों वेदों के अपौरुषेय होने से वैदिक धर्म ईश्वरीय है, किसी मनुष्य का चलाया हुा नहीं है ।

वैदिक धर्म में एक निराकार, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, न्यायकारी ईश्वर को ही पूज्य (उपास्य) मानाजाता है, उसके स्थान में अन्य देवी-देवताओं को नहीं ।

ईश्वर अवतार नहीं लेता अर्थात् कभी भी शरीर धारण नहीं करता ।

जीव और ईश्वर (ब्रह्म) एक नहीं है बल्कि दोनो की सत्ता अलग-अलग है और मूल प्रकृति इन दोनों से अलग तीसरी सत्ता है । ये तीनों अनादि हैं तीनों ही एक दूसरे से उत्पन्न नहीं होते ।

वैदिक धर्म के सब सिद्धान्त सृष्टिक्रम के नियमों के अनुकूल तथा बुद्धि सम्मत हैं । जबकि अन्य मतों के बहुत से सिद्धान्त बुद्धि की घोर उपेक्षा करते हैं ।

हरिद्वार, काशी, मथुरा, कुरुक्षेत्र, अमरनाथ, प्रयाग आदि स्थलों का नाम तीर्थ नहीं है । जो मनुष्यों को दुःख सागर से पार उतारते हैं उन्हें तीर्थ कहते हैं । विद्या, सत्संग, सत्यभाषण, पुरुषार्थ, विद्यादान, जितेन्द्रियता, परोपकारी, योगाभ्यास, शालीनता आदि शुभ तीर्थ हैं ।

भूत-प्रेत डाकिन आदि के प्रचलित स्वरूप को वैदिक धर्म में स्वीकार नहीं किया जाता है । भूत-प्रेत शब्द आदि तो मृत शरीर के कालवाची शब्द है और कुछ नहीं ।

स्वर्ग के देवता अलग से कोई नहीं होते । माता-पिता, गुरु, विद्वान तथा पृथ्वी, जल अग्नि, वायु आदि ही स्वर्ग के देवता होते हैं, जिन्हें यथावत रखने व यथायोग्य उपयोग करने से सुख रुपी स्वर्ग की प्राप्ति होती है ।

स्वर्ग और नरकरू स्वर्ग और नरक किसी स्थान विशेष में नहीं होते, सुख विशेष का नाम स्वर्ग और दुःख विशेष का नाम नरक है और वे भी इसी सन्सार में शरीर के साथ ही भोगे जाते हैं । स्वर्ग-नरक के सम्बन्ध में गढ़ी हुई कहानियों का उद्देश्य केवल कुछ निष्कर्मण्य लोगों का भरण-पोषण करना है।

मुहूर्तःजिस समय चित्त प्रसन्न हो तथा परिवार में सुख-शान्ति हो वही मुहूर्त है । ग्रह नक्षत्रों की दिशा देखकर पण्डितों से शादी ब्याह, कारोबार आदि के मुहूर्त निकलवाना शिक्षित समाज का लक्षण नहीं है । क्योंकि दिनों का नामकरण हमारा किया हुआ है, भगवान का नहीं अतः दिनों को हनुमान आदि के व्रतों और शनि आदि के साथ जोड़ना व्यर्थ है । अर्थात् अवैदिक है ।

राशिफल एवं फलित ज्योतिषः ग्रह नक्षत्र जड़ है और जड़ वस्तु का प्रभाव सभी पर एक सा पड़ता है अलग-अलग नहीं । अतः ग्रह नक्षत्र देखकर राशि विर्धारित करना एवं उन राशियों के आधार पर मनुष्य के विषय में भांति-भांति की भविष्य वाणियां करना नितान्त अवैज्ञानिक है । जन्मपत्री देखकर वर-वधू का वयन करने के बजाए हमें गुण-कर्म-स्वभाव एवं चिकित्सकीय परीक्षण के आधार पर ही रिश्ते तय करने चाहिए । जन्म पत्रियों का मिलान करके जिनके विवाह हुआ हैं क्या वे दम्पति पूर्णतः सुखी हैं ? विचार करें राम-रावण व कृष्ण-कन्स की राशि एक ही थी ।

चमत्कार दुनिया में चमत्कार कुछ भी नहीं है । हाथ घुमाकर चेन, लाकेट बनाना एवं भभूति देकर रोगों को ठीक करने का दावा करने वाले क्या उसी चमत्कार विद्या से रेल का इन्जन व बड़े-बड़े भवन बना सकते हैं ? या कैन्सर, हृदय तथा मस्तिष्क के रोगों को बिना ऑपरेशन के ठीक कर सकते हैं ? यदि वह ऐसा कर सकते हैं तो उन्होंने अपने आश्रमों में इन रोगों के उपचार के लिए बड़े-२ अस्पताल क्यों बना रखे हैं ? वे अपनी चमत्कारी विद्या से देश के करोड़ों अभावग्रस्त लोगों के दुःख-दर्द क्यों नहीं दूरकर देते ? असल में चमत्कार एक मदारीपन है जो धर्मकी आड़ में धर्म भीरु जनता के शोषण का बढ़िया तरीका है ।

गुरु और गुरुडमःजीवन को संस्कारित करने में गुरु का महत्वपूर्ण स्थान है । अतः गुरु के प्रति श्रध्दाभाव रखना उचित है । लेकिन गुरु को एक अलौकिक दिव्य शक्ति से युक्त मानकर उससे श्नामदानश लेना, भगवान या भगवान का प्रतिनिधि मानकर उसका अथवा उसके चित्र की पूजा अर्चना करना, उसके दर्शन या गुरु नाम का संकीर्तन करने मात्र से सब दुःखों और पापों से मुक्ति मानना आदि गुरुडम की विष-वेल है अर्थात् वैदिक मान्यताओं के विरुद्ध है । अतः इसका परित्याग करनाचाहिए ।

मृतक कमः मनुष्य की मृत्यु के बाद उसके मृत शरीर का दाह कर्म करने के पश्चात् अन्य कोई करणीय कार्य शेष नहीं रह जाता । आत्मा की शान्ति के लिए करवाया जाने वाला गरुड़ पुराण आदि का पाठ या मन्त्र जाप इत्यादि धर्म की आड़ लेकर अधार्मिक लोगों द्वारा चलाया जाने वाला प्रायोजित पाखण्ड है अर्थात् वैदिक मान्यताओं के विरुद्ध है ।

राम, कृष्ण, शिव, ब्रह्मा, विष्णु आदि ऐतिहासिक महापुरुष थे न कि वे ईश्वर या ईश्वर के अवतार थे ।

जो मनुष्य जैसे शुभ या अशुभ (बुरे) कर्म करता है उसको वैसा ही सुख या दुःख रुप फल अवश्य मिलता है । ईश्वर किसी भी मनुष्य के पाप को किसी परिस्थिति में क्षमा नहीं करता है ।

मनुष्य मात्र को वेद पढ़ने का अधिकार है, चाहे वहस्त्री हो या शूद्र ।

...पृ. ३ का शेष.

प्रत्येक राष्ट्र में राष्ट्रोन्नति के लिए गुण-कर्म-स्वभाव के आधार पर चार ही प्रकार के पुरुषों की आवश्यकता है इसीलिए वेद मेंचार वर्ण स्थापित किए हैं- १) ब्राह्मण, २) क्षत्रिय, ३) वैश्य, ४) शूद्र ।

व्यक्तिगत उन्नति के लिए भी मनुष्य की आयु को चार भागों में बान्टा गया है इन्हें चार आश्रम भी कहते हैं । २४ वर्ष की अवस्था तक ब्रह्मचर्य आश्रम, २५ से ५० वर्ष की अवस्था तक गृहस्थाश्रम, ५० से ७५ वर्ष की अवस्था तक वानप्रस्थाश्रम और इसके आगे संन्यासाश्रम माना गया है।

जन्म से कोई भी व्यक्ति ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र नहीं होता । अपने-अपने गुण-कर्म-स्वभाव से ब्राह्मण आदि कहलाते हैं, चाहे वे किसी के भी घर में उत्पन्न हुए हों ।

भंगी, चमार आदि के घर उत्पन्न कोई भी मनुष्य जाति या जन्म के कारण अछूत नहीं होता । जब तक गन्दा हैतब तक अछूत है चाहे वह जन्म से ब्राह्मण हो या भंगी या अन्य कोई ।

वैदिक धर्म पुनर्जन्म को मानता है । अच्छे कर्म अधिक करने पर अगले जन्म में मनुष्य का शरीर और बुरे कर्म करने पर पशु, पक्षी, कीट-पतंग आदि का शरीर, अपने कर्मों को भोगने के लिए मिलता है । जैसे अपराध करने पर मनुष्य को कारागार में भेजा जाता है ।

गंगा-यमुना आदि नदियों में स्नान करने से पाप नहीं धुलते । वेद के अनुसार उत्तम कर्म करने से व्यक्ति भविष्य में पाप करने से बच सकता है । जल से तो केवल शरीर का मल साफ होता है आत्मा का नहीं ।

पन्चमहायज्ञ करना प्रत्येक गृहस्थी के लिए आवश्यक है ।

मनुष्य के शरीर, मन तथा आत्मा को संस्कारी (उत्तम) बनाने के लिए गर्भाधान संस्कार से लेकर अन्त्येष्टि पर्यन्त १६ संस्कारों काकरना सभी गृहस्थजनों का कर्तव्य है ।

मूर्तिपूजा, सूतियों का जल विसर्जन, जगराता, कांवड लाना, छुआछूत, जाति-पाति, जादू-टोना, डोरा-गंडा, ताबिज, शगुन, जन्मपत्री, फलित ज्योतिष, हस्तेरेखा, नवग्रह पूजा, अन्धविश्वास, बलि-प्रथा, सतीप्रथा, विभाजन का राष्ट्रघाती पुरस्कार मिलने लगा है और स्वार्थी राजनीति इन्हें चिरस्थायी करने पर तुली हुई है, स्वामी दयानन्द और महात्मा गाँधी की तरह राष्ट्र-हितैषी छुआ-छूत को दूर करने की नीति को ही राजनीति ने निर्ममता से समाप्त कर दिया है ।

वेदों को अपनाने का सिद्धान्तःस्वामी दयानन्द का सुवचारित निश्चय था कि जब तक भारतवर्ष ने वेदों की शिक्षा को अपने राष्ट्रीय जीवन में अपना रखा था, तब तक देश की सर्वांगीण उन्नति हुई और देश संसार के सभी देशों का शिरोमणि बना रहा, स्वामी जी ने आर्य समाज का तीसरा नियम ही बना दिया- ''वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है ।''. वेदों को अपनाने के अनेकों कारण थे । वेद पुरूषार्थ और कर्मण्यता का उपदेश देते हैं, भाग्य, नियति का विरोध करते हैं- **''कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजिविषेत्''** -यावत् जीवन कर्म करते हुए जीने की इच्छा करो । परमेश्वर ने मानवयोनि को उन्नति करने तथा दक्षता प्राप्त करने के लिए बनाया है- **''उद्यानम् ते नावयानं, जीवातुं ते दक्षतातुं कृणोमि''** -वेद कर्म न करने वालों को कामचोर, दस्यु कहता है, ऐसे परजीवियों, पैरासाइटों को दण्ड देने का आदेश देता है- **''अकर्मा दस्युः बधीःदस्युं''** । परमेश्वर ने मनुष्य को उचित, अनुचित परखने की शक्ति दी है वेद कहते हैं- **''अश्रधां अनृते दधात्, श्रद्धां सत्ये प्रजापतिः''** । वेदों में पाप क्षमा का सिद्धान्त नहीं है, पाप या पुण्य, सब का फल मनुष्य को भोगना पड़ता है- **''अवश्यमेव भोक्तव्यम् कृतं कर्म शुभाशुभं''** । वेदों में सांसारिक और पारमार्थिक उन्नति का परिपूर्ण उपदेश हुआ है । वेद में कृषि, वाणिज्य, उद्योग, सब की शिक्षा है । वेद में सब विद्याओं का मूल पाया जाता है । वेदों में पृथ्वी से लेकर अन्तरिक्ष और द्युलोक पर्यन्त सब ज्ञान का परिपूर्ण वर्णन है । वेद मेंस्वाराज्य की बड़ी महिमा है । अनेक मन्त्रों में **''अर्चन्ननु स्वाराज्यम्''** का सम्पुट हुआ है । वेद में प्रखर राष्ट्रवाद की महिमा का वर्णन है । प्रार्थना है कि हमारे राष्ट्र में सब प्रकार के विद्वान, योद्धा, विदुषी स्त्रियाँ और बलवान गाय, घोड़े, पशु, आदि हों । वेद में मातृभूमि की बड़ी उत्कृष्ट भावना विद्यमान है । अथर्ववेद के भूमिसूक्त में कहा गया है- **''माता भूमिः, पुत्रोऽहम् पृथिव्याः''** । मातृभूमि की यह प्राचीनतम प्रतिष्ठा है । वेद में विश्व-सरकार और विश्व-नागरिक का भी वर्णन है । वेद में विश्वनागरिक को ''विस्वमानुष'' कहा गया है । यह संयुक्त राष्ट्रसंघ से भी अधिक उत्कृष्ट व्यवस्था में पायी जाती है ।

स्वामी दयानन्द ने अपने जीवन की परवाह न करते हुए भी सत्य, न्याय और वेद का प्रचार किया । मानव जाति के कल्याण में ही उन्होंने अपना जीवन समाप्त कर दिया । सत्य की रक्षा के लिए ही उन्हें धोखे से विषपान कराया गया और १८८३ ई. में दिवाली की सन्ध्या को उनका देहान्त हो गया । ऐसे महात्मा का गुण्य स्मरण भी सौभाग्य है ।

मांसाहार, मद्यपान, बहुविवाह आदि सामाजिक कुरीतियां वैदिक राहसे भटक जाने के बाद हिन्दू धर्म के नाम स बनी हुई हैं वेदों में इनका नाम भी नहीं है ।

वेद के अनुसार जब मनुष्य सत्यज्ञान को प्राप्त करके निष्काम भाव से शुभ कर्मों को प्राप्त करता है और महापुरुषों की भान्ति उपासना से ईश्वर के साथ सम्बन्ध जोड़ लेता है । तब उसकी अविद्या (राग-द्वेष आदि की वासनाएं) समाप्त हो जाती है । मुक्ति में जीव ३३१ नील, १० खरब, ४० अरब वर्ष तक सब दुःखों से छूटकर केवल आनन्द का ही भोग करके फिर लौटकर मनुष्यों में उत्तम जन्म लेता है ।

जब-जब मिलें तब-तब परस्पर 'नमस्ते शब्द' बोलकर अभिवादन करें । यही भारत की प्राचीनतम वैदिक प्रणाली है ।

वेद में परमेश्वर के अनेक नामों का निर्देश किया है जिनमें मुख्य नाम 'ओ३म्' है । शेष नाम गौणिक कहलाते हैं अर्थात् यथा गुण तथा नाम ।

'यदि ऋषि दयानन्द न आते?'

–मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।

ऋषि दयानन्द का जन्म 12 फरवरी, 1825 को गुजरात राज्य के मोरवी जिले के टंकारा कस्बे में हुआ था। उनके पिता का नाम श्री कर्षनजी तिवारी था। जब उनकी आयु का चौदहवां वर्ष चल रहा था तो उन्होंने अपने शिवभक्त पिता के कहने पर शिवरात्रि का व्रत रखा था। शिवरात्रि को अपने कस्बे के बाहर कुबेरनाथ के मन्दिर में पिता व स्थानीय कुछ लोगों के साथ उन्होंने रात्रि जागरण करते हुए चूहों को मन्दिर के अन्दर बने हुए बिलों से निकलकर शिवलिंग पर भक्तों द्वारा चढ़ाये गये अन्नादि पदार्थों को खाते देखा था। इससे उनकी शिव की मूर्ति में श्रद्धा, विश्वास एवं आस्था समाप्त हो गई थी। उनमें सच्चे शिव को जानने व प्राप्त करने की इच्छा व संकल्प उत्पन्न हुआ था। उसके बाद उनकी बहिन व चाचाजी की मष्यु होने पर उन्हें वैराग्य हो गया था। सच्चे शिव को जानने और जन्म व मष्यु के बन्धन से मुक्त होने के लिए उन्होंने अपनी आयु के बाईसवें वर्ष में गष्हत्याग कर दिया था। आरम्भ में वह गुजरात में अनेक स्थानों पर रहकर धार्मिक विद्वानों व योगियों के सम्पर्क में आये थे और उनसे अपने प्रश्नों का समाधान कराते रहे। संस्कष्त का वह कुछ अध्ययन कर चुके थे। उनको यजुर्वेद की संहिता स्मरण थी। घर का त्याग करने के बाद भ्रमण करते हुए उन्हें कहीं कोई ग्रन्थ मिलता तो वह उसका अध्ययन करते थे। बाद में गुजरात सहित देश के अनेक भागों का भ्रमण उन्होंने अपने उद्देश्य 'सच्चे शिव की प्राप्ति' के लिए किया। उन्हें योग के सच्चे गुरु मिले जिनसे उन्होंने योग सीखा। बाद में विद्यागुरु के रूप में उन्हें मथुरा के स्वामी विरजानन्द सरस्वती जी मिले जिनसे उनकी विद्या की पिपासा शान्त व पूर्ण हुई। गुरु के परामर्श व प्रेरणा से उन्होंने समाज व देश से अविद्या दूर करने का संकल्प लिया और धर्म की जिज्ञासा में स्वतःप्रमाण एवं परमप्रमाण ईश्वरीय ज्ञान वेदों का प्रचार व प्रसार आरम्भ किया। वह स्थान–स्थान पर जाते और वहां उपदेश, शंका सामधान व शास्त्रार्थ करते थे। गुरु के उपदेश, वेद और शास्त्राध्ययन तथा अपने विवेक से मूर्तिपूजा, अवतारवाद, फलित ज्योतिष और मष्तक श्राद्ध आदि को उन्होंने वेद, तर्क के विरुद्ध व असत्य पाया था। उनके समय में स्त्री व शूद्रों को वेदाध्ययन का अधिकार नहीं था। स्त्रियों की सामान्य शिक्षा भी प्रायः बन्द हो गई थी। देश में वेदविरुद्ध जन्मना जाति–व्यवस्था प्रचलित थी जिससे भेदभाव उत्पन्न होने के साथ कुछ वर्गों का शोषण व उनके साथ अन्याय भी होता था। ऋषि ने इन सभी अज्ञान की बातों अर्थात् अन्धविश्वासों व सामाजिक अहितकर मान्यताओं का खण्डन किया और सत्य वैदिक मान्यताओं का प्रमाणपूर्वक मण्डन व प्रचार किया। लोग उनके उपदेशों से प्रभावित होने लगे व उन्हें अपनाने लगे। देश भर में हलचल हुई और सभी मतों के लोग स्वामी दयानन्द जी द्वारा मत–मतान्तरों की अविद्या पर किये जाने वाले प्रश्नों के उत्तर नहीं दे पाने के कारण उनके शत्रु व विरोधी बनते गये। स्वामी दयानन्द जी शास्त्रार्थ भी करते थे। प्रायः सभी प्रमुख मतों के आचार्यों से उनके शास्त्रार्थ हुए और सभी शास्त्रार्थों व वार्तालापों में अन्य मतों के विद्वान निरुत्तर होकर उनसे पराजित हो जाते थे।

स्वामी दयानन्द जी के समय में वेद विलुप्त हो चुके थे। वेदों के सत्य अर्थों का ज्ञान भी उनके समय के पण्डितों वा ब्राह्मणों को नहीं था। स्वामी जी ने वेदों का पुनरुद्धार किया। वेदों के मन्त्रों के सत्यार्थ करने सहित संस्कष्त व हिन्दी में उनका भाष्य कर स्वामी जी ने उसे सामान्य व्यक्ति के अध्ययन का विषय बनाया। स्वामी जी ने स्त्री व शूद्रों सहित प्रत्येक मनुष्य, स्त्री व पुरुष को, वेदों के पढ़ने–पढ़ाने व सुनने–सुनाने का अधिकार दिया जिससे वेदों पर एक वर्ग का एकाधिकार समाप्त हो सका और सभी लोग वेद पढ़ने व प्रचार करने लगे। उन्हीं के कारण पूरे विश्व में वेदों की प्रतिष्ठा हुई। स्वामी जी ने सभी बच्चों के लिए निःशुल्क व एक समान शिक्षा प्रणाली 'गुरुकुलीय शिक्षा' की पैरवी की। स्वामी जी के शिष्यों ने उनकी मष्यु के बाद गुरुकुल व डीएवी कालेज खोले,

जो अब भी चल रहे हैं। इन विद्यालयों में स्वामी दयानन्द जी के विचारों व मान्यताओं के आधार पर शिक्षा दी गई व अब भी दी जाती है। ऋषि दयानन्द न आते तो वेदों का पुनरुद्धार न होता और न ही स्त्रियों और शूद्रों को वेदाध्ययन का अधिकार मिलता। देश में शिक्षा के प्रचार–प्रसार का आन्दोलन भी स्वामी जी के सत्यार्थप्रकाश में लिखे विचारों से आरम्भ हुआ। लोगों ने शिक्षा के महत्व को समझा और धीरे–धीरे अपनी सन्तानों को पाठशालाओं में भेजने लगे। यदि स्वामी दयानन्द न आते तो यह कार्य भी उस रूप में कदापि न हो पाता जैसा कि उनकी प्रेरणा से हुआ है।

वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेदों का पढ़ना और प्रचार करना ही सभी मनुष्यों का परम–धर्म है। यह बात स्वामी दयानन्द ने ही आर्यसमाज बनाकर उसके नियमों में कही है। स्वामी दयानन्द जी के अनुयायियों ने वेद पढ़े और प्रचार भी किया जिससे वैदिक धर्म की पूरे विश्व में प्रतिष्ठा हुई। वेदों में ईश्वर व जीवात्मा के सत्यस्वरूप सहित इनके गुण, कर्म व स्वभावों का वर्णन है। प्रकषति के स्वरूप व गुणों आदि का वर्णन भी वेदों में है। वेदों को पढ़कर ही अज्ञानी व ज्ञानी मनुष्यों को ईश्वर, जीवात्मा व प्रकषति के सत्यस्वरूप का ज्ञान हुआ व अब भी होता है। लोगों को ईश्वर की उपासना की सत्य विधि का ज्ञान हुआ और लोग ऋषि दयानन्द की बनाई सन्ध्या–यज्ञ पद्धति से सन्ध्या और यज्ञ करने लगे। आज संसार में करोड़ो लोग ऋषि दयानन्द की पद्धति से सन्ध या व यज्ञ करते हैं। इसका श्रेय भी ऋषि दयानन्द जी को ही है। यदि वह न आते तो सन्ध्या व यज्ञ का विश्व स्तर पर ऐसा प्रचार न होता जैसा कि उन्होंने व उनके बनाये संगठन ने किया है। स्वामी जी के द्वारा ही लोगों के सम्मुख मूर्तिपूजा, मष्तक श्राद्ध, फलित ज्योतिष, अवतारवाद, वैदिक वर्णव्यवस्था, जन्मना–जातिवाद आदि का सत्य स्वरूप सामने आया। यदि वह न आते तो लोग इन विषयों में अज्ञान में फंसे रहते जैसा कि उनके समय तक फंसे हुए थे। ऋषि दयानन्द के कारण ही आज हम सच्चे ईश्वर को जान सके हैं व उसकी स्तुति, प्रार्थना व उपासना कर ईश्वर के गुणों को प्राप्त होकर आध्यात्मिक उन्नति को प्राप्त हो रहे हैं। स्वामी दयानन्द जी ने बाल विवाह, बेमेल विवाह आदि का निषेध ा कर गुण, कर्म व स्वभाव पर आध ाारित विवाहों के प्रचलन पर बल दिया था। आज विवाह इसी आधार पर होने आरम्भ हो गये हैं। कम आयु की विधवाओं के पुनर्विवाह भी आर्यसमाज के प्रयासों से आरम्भ हुए। यदि स्वामी दयानन्द जी न आते तो धर्म व समाज सुधार के कार्य न होते जो ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज ने किए हैं। जन्मना जातिवाद को भी स्वामी दयानंद जी ने वेद विरुद्ध घोषित किया था। वह सब मनुष्यों की एक ही जाति मानते थे। उनके व आर्यसमाज के प्रचार के कारण ही आज विद्वत समाज जन्मना जातिवाद के अभिशाप से बचने का प्रयत्न करते हुए देखे जाते हैं। देश के आजाद होने पर जन्मना जाति के आधार पर भेदभाव के विरुद्ध कानून भी बने हैं। संविधान की दषष्टि में सभी मनुष्य व जन्मना जातियां समान है। यह भी ऋषि दयानन्द व आर्यसमाज की बहुत बड़ी देन है। युवक व युवतियों के विवाह भी आज गुण, कर्म व स्वभाव सहित स्वयंवर की रीति से जन्मना जाति तोड़कर हो रहे हैं। यह भी स्वामी दयानन्द के विचारों की विजय ही है।

स्वामी दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश व अन्य ग्रन्थों के माध यम से देश की आजादी का जो मन्त्र दिया था, उस आजादी को प्राप्त करने में उनके अनुयायियों ने सर्वाधिक योगदान दिया है। स्वतन्त्रता आन्दोलन में गरम व नरम दल के शीर्ष पुरुष पं. श्यामजी कृष्ण वर्मा और पं. गोपाल कृष्ण गोखले जी उनके विचारों से ही प्रभावित थे। गोखले जी महादेव रानाडे जी के शिष्य थे। यह रानाडे महोदय स्वामी दयानन्द जी के साक्षात् शिष्य थे। देश को आजाद कराने में आर्यसमाज और वेद के विचारों सहित आर्यसमाज के अनुयायियों की विशेष महत्वपूर्ण भूमिका है। यदि स्वामी दयानन्द जी न आते तो देश को आजादी मिलती या नहीं, देश का क्या होता, ठीक से कहा नहीं जा सकता। स्वामी दयानन्द जी के कारण देश में आजादी का आन्दोलन आरम्भ हुआ व देश आजाद हुआ। आजादी प्राप्ति में भी स्वामी दयानन्द व आर्यसमाज का उल्लेखनीय योगदान है। उनकी

- शेष पृ. १० पर

जीवन में कर्म की प्रधानता

-पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय

कुर्वन्नेवेहकर्माणि जिजीविषेच्छतँ समाः । एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ।।

-यजुर्वेद अध्याय ४०, मन्त्र २

अन्वयः इह कर्माणि कुर्वन् एव शतं समा) जिजीविषेत् । एवं त्वयिनरे न कर्म लिप्यते । इतः अन्यथा न अस्ति ।

अर्थ-(इह) इस सन्सार में (कर्माणि) कर्मों को (कुर्वन् एव) करते हुए ही मनुष्य (शतं समारू) सौ वर्ष तक (जिजीविषेत्) जीने की इच्छा करे । (एवं) यही एक साधन है जिसके द्वारा (त्वयि नरे) तुझ मनुष्य में कर्म लिप्त न होंगे । (इतः अन्यथा) इससे भिन्न दूसरा कोई मार्ग (न अस्ति) नहीं है ।

व्याख्याः- इस मन्त्र में 'कर्म' का गौरव और माहात्म्य दिखाया गया है । विस्तृत व्याख्या करने से पहले मुख्य भावना को समझने का यत्न करना चाहिए । जब एक बार भावना हृदयंगम हो जाती है तो अन्य तत्व सम्बन्धी बारीक बातें समझने में सुगमता होती है । मुख्य भावना यह है- 'कर्म करो तभी कर्म के बन्धनों से छुटकारा मिलेगा ।' कर्म क्या है और कर्म का बन्धन क्या है । इसके लिए एक दृष्टान्त पर विचार कीजिए । एक चोर ने चोरी की । चोरी एक कर्म था । शासन की ओर से उसे कारागार मिला । यह कारागार ही कर्म का बन्धन है । ष्बाधना लक्षणं दुःखमष (न्यायदर्शन १/१/२१) । 'बन्धन ही दुख का लक्षण है । कैदी जेल में बन्द है । यह 'बन्धन' है । वह नहीं चाहता फिर भी चक्की पीसनी पड़ती है । यह बन्धन है । कहीं जा-आ नहीं सकता, यह कर्म का बन्धन है । किसी अपने प्यारे से मिल नहीं सकता यही बन्धन है । यह सब कर्म के बन्धन हुए । कर्म था चोरी । कर्म के बन्धन हुए वह कर्म जो बिना इच्छा के जबरदस्ती करने पड़ते हैं । वेद मन्त्र कहता है कि इन कर्म के बन्धनों से छुटकारा पाने के लिए भी निरन्तर कर्म करने चाहिए । उन कर्मों का प्रकार भिन्न होगा । उनकी प्रकृति भी भिन्न होगी । उनके लक्षण भी भिन्न होंगे परन्तु वह होंगे 'कर्म' ही । कर्म के बन्धन बिना कर्म किए नहीं छूट सकते । अनाचार दोष से रोग उत्पन्न होता है । उपचार से रोग दूर होता है । अनाचार भी कर्म था जिसका बन्धन हुआ रोग । उपचार भी कर्म है परन्तु भिन्न प्रकार का इसलिए वह 'बन्धन' का छुड़ाने वाला है, बन्धन को कड़ा करने वाला नहीं ।

यह प्रश्न केवल दार्शनिक नहीं । लोक व्यवहार की नित्य चीज है । हम रोज तकदीर और तदबीर की बहस सुनते हैं । तकदीर बन्धन है और तदबीर कर्म है । जीवन में हम सैकड़ों बन्धन देखते हैं जिनको हमने नहीं बनाया । वह बन्धन कहीं से बने बनाए आ गए । जेल के विशाल भवन को चोर ने नहीं बनाया । किसी और शक्ति ने जबरदस्ती उसके ऊपर यह बन्धन थोप दिए । वह जकड़ा है । जैसा तकदीर में दिया है होगा, इससे छुटकरा नहीं । कुछ लोग कहते हैं कि खुदा (ईश्वर) जो चाहते है करता है । जिसको चाहता है सन्मार्ग दिखाता है, जिसको चाहता है 'गुमराह' करता है । अल्लाह की मर्जी के विरुद्ध हो भीक्या सकता है । सरकार जबरदस्त है उसने मजबूत जेल खाना बनाकर उसमें चोर को ठूस दिया । कितने ही भागने की तदबीर करो भाग नहीं सकते । इसलिए उस घड़ी की प्रतीक्षा करो जब ईश्वर की ही मर्जी हो और वह बन्धन से मुक्त कर दे । ऐसे तकदीर के गुलामों की संख्या ईश्वर भक्तों में सबसे अधिक है । इसका परिणाम है 'आलस्य', क्रियाहीनता । आलस्य के साथ इसी के बहुत से बाल-बच्चे हैं जो अन्य रूपों में प्रकट होते हैं और बन्धनों को जकड़ते हैं । कुछ ऐसे भीहैं जो बन्धन से छूटने के लिए हाथ-पैर मारते हैं । कोई जेल की दीवार फान्द कर भागता है । कोई खिड़कयों की छड़ों को तोड़ देता है । कोई चौकीदारों की आंख में धूल डालता है । इसको आप तदबीर कह सकते हैं । तदबीर के नाम पर सहस्त्रों पातक किए जाते हैं, जिनसे बन्धन ठीले नहीं होते अधिक कड़े हो जाते हैं । यह 'तदबीर' थी तो कर्म परन्तु यह सोचकर नहीं किए गए थे कि बन्धन के कारणों पर विचार किया जाता । अतः ऐसे कर्म छुटकारे के हेतु सिद्ध नहीं होते ? कर्म करना मनुष्य का स्वभाव है । कर्म करना सन्सार की हर वस्तु का स्वभाव है । मनुष्य भी इसी सन्सार का एक भाग है । सारी मशीन चलती है तो ऐसा कौन-सा पुर्जा है जो बिना चले रहसके । लेकिन एक काम इच्छा से किया जाता है और एक बिना इच्छा के । जीते तो सभी हैं परन्तु जीकर क्या करेंगे ऐसा तो बहुत कम लोग सोचते हैं । इसलिए वेदमन्त्र में एक शब्द आया है 'जिजीविषेत्' । इस रहस्य का सौन्दर्य समझने के लिए कुछ संस्कृत व्याकरण का पारिभाषिक ज्ञान आवश्यक है । यह क्रिया है 'विधिलिंङ्' और साथ ही सन्नन्त भी है । जिनको 'विधिलिंङ्ग' और सन्नन्त के स्वरूप का ज्ञान नहीं उनके लिए मन्त्र का महत्व समझने में कठिनाई होगी ।

विधि-निमन्त्रण-आमन्त्रण-अधीष्ट सम्प्रशन-प्रार्थ नेषु लिंङ् (अष्टाध्यायी ३/३/१६१) यहां 'लिंङ्ग' लकार विधि के अर्थ में प्रयुक्त होता है अर्थात् जब किसी को आदेश देते हैं कि उसको अमुक काम करना ही चाहिए तो लिंङ् लकार का प्रयोग किया जाता है । अब ध्सन्नन्तश (सन+अन्त) पर विचार कीजिए 'धातोरु कर्मण' समान-कतृर्कात् इच्छायां वाष अष्टाध्यायी ३/१/६) । यहां इतना जानना पर्याप्त होगा कि जहां 'इच्छा' प्रकट करनी हो वहां क्रिया की धातु में 'सन' जोड़ देते हैं । इस प्रकार जिजीविषेत् विधिलिंङ् भी है और सन्नन्त भी अर्थात् मनुष्य को चाहिए कि जीने की इच्छा करे । किस प्रकार 'कर्माणि कुर्वन् एव' (कर्म करते हुए भी) बिना कर्मों को करने की इच्छा के जीने की इच्छा से कोई लाभ नहीं । यदि कुदरत को यह मन्जूर न होता कि हम चलें तो हम को पैर न मिलने चाहिए थे । यदि यह मन्जूर न होता कि हम देखें तो आंखें देना निरर्थक था । इसलिए कुदरत ने हमारे शरीर के प्रत्येक अवयव में कुछ ऐसी प्रेरणा दी हुई है कि निरन्तर काम करना ही है । भेद केवल इतना ही है कि जो काम हम अपनी इच्छा से करते हैं उसके करने में मजा आता है । लोग नित्य सैर को जाते हैं । यदि सरकार आदेश दे देवे कि तुम को अवश्य ही सैर को जाना पड़ेगा तो सैर भी जान का बवाल हो जाती है ।

इसलिए वेद मन्त्र में उपदेश है कि पहले से ही ऐसी इच्छा करो कि सौ वर्ष जीना है तो निष्क्रिय न होकर अपितु कार्यक्रम बना कर निरन्तर कर्म करने की योजना भी हो और इच्छा भी । सभी जीते रहना चाहते हैं । उनसे पूछो क्यों ? किस काम के लिए ? तो इसका उनके पास कोई उत्तर नहीं है । यदि दो वर्ष और जीते रहोतो क्या करोगे ? विचारा नहीं । बस खाएंगे, पिएंगे, मौज करेंगे । खाना-पीना और मौज करना कर्मतो नहीं यह तो जीवन के साधन मात्र हैं । खाना आसान है, पीना आसान है । परन्तु मौज करना तो आसान नहीं । ("Ekat you can drink you can-But you cannot be merry") इसलिए कर्म करने की प्रबल इच्छा होनी चाहिए । जो बुद्धिमत्ता से कर्मों की योजना बनाता है और उस पर चलने का यत्न करता है उसका बन्धन छूट जाता है । जेल का कैदी जेल में रहकर जो नियुक्त कर्म करता रहता है वह जेल के बन्धन से अवश्य छूट जाता है । कर्मों के करने में तीन प्रकार के दोष आ सकते हैं । कर्तव्य को न करना, अकर्तव्य को करना, कर्तव्य का उल्टा करना । इन तीनों प्रकार के दोष कर्म-बन्धन के कारण होते हैं । यदि गेहूं न बोये जायें तो गेहूं पैदा न होगा, उगे हुए गेहूं में अधिक पानी देना, इससे गेहूं उत्पन्न होकर नष्ट हो जाएंगे और गेहूं के स्थान में जौ बो देना, तब भी गेहूं पैदा न होगा । अतः कर्तव्य कर्म के करने पर ही बन्धन छूटेगा । गीता में इसी वेद मन्त्र पर आधारित एक श्लोक है-

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषुकदाचन । मां कर्मफल हेतुर्भूरू माते संगोस्त्वकर्मणरू ।।

यहां अधिकार का अर्थ है कर्तव्य । अधिकार, अधिकरण यह दोनों समानार्थक हैं । सूत्र ग्रन्थों में अधिकार सूत्र वह होते हैं जिनमें अन्य सूत्रों का समावेश होता है । गीता के श्लोक का तात्पर्य है कि कर्म ही मनुष्य के चिन्तन क्षेत्र का विषय या अधिकरण है फल नहीं । इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि बिना सोचे समझे अर्थात् किस कर्म से क्या फल होगा, किसी काम को कर दिया जाए । कर्म की प्रेरणा ही उसके फल की दृष्टि से होती है । गेहूं बोने वाला पहले देख लेता है कि गेहूं उगाने रूपी फल की प्राप्ति तभी होगी जब गेहूं बोया जायगा । 'स्वर्गकामोयजेत' अर्थात् स्वर्ग की कामना वाले को यज्ञ करना चाहिए । यहां फल की न अपेक्षा है न आवहेलना । प्रश्न यहां चिन्तन का है । जब यह निश्चित हो गया कि अमुक कर्म हमारा कर्तव्य है तो फल का चिन्तन छोड़ देना चाहिए । फल की प्रेरणा आरम्भ में होती है । परन्तु यदि कर्तव्य-पालन के समय मन में फल की उत्कण्ठा बनी रहेगी तो मन में दुविधा उत्पन्न हो जाएगी और कर्तव्य के यथेष्ट पालन में बाधा होगी । कर्म का फल तुम्हारे हाथ में नहीं अतः फल का अपने को हेतु समझना मूर्खता होगी । इसके लिए एक दृष्टान्त लीजिए ।

आप सरकारी दफ्तर में क्लर्क हैं । आपने पद को स्वीकार हीतब किया जब आपको निश्चित हो गया कि अमुक वेतन मिलेगा । परन्तु जब आप अपने काम में लगे तो 'वेतन' आपके चिन्तन क्षेत्र का विषय नहीं रहा । कार्यालय का कार्य ही एक मात्र चिन्तन का विषय है, वेतन आपके शासक के चिन्तन का विषय है । अतः जो सेवक सेवा का ध्यान छोड़कर हर घड़ी वेतन पर दृष्टि रखता है वह अपने पद का काम न करके अनेक भूलें करता है । क्योंकि वह कर्म का हेतु न होकर कर्म फल का हेतु बन जाता है । गीता में कहा है कि तेरा अकर्मों से सम्पर्क न होना चाहिए । कर्म हीनता का नाम भी अकर्म है और उल्टे काम का नाम भी अकर्म है । (अकर्म=अ+कर्म=डो कर्म नहीं उसका करना । या जो कर्म है उसको न करना) ।

कुछ लोगों ने इस मन्त्र के उल्टे ही अर्थ लगाए हैं । उनका कहना है कि इस मन्त्र में जिन कर्मों पर बल दिया गया है वह केवल मूर्खों के लिए है । जो ज्ञानी है उनके लिए तो कर्म की आवश्यकता ही नहीं रहती । श्री शंकराचार्य जी ईशोपनिषद् के भाष्य में लिखते हैं- 'अथ इतरस्यानात्मज्ञतया आत्म ग्रहणाय अशक्त स्येदमुदपदिशति मन्त्रः कुर्वन्नेवेहेति ।' अर्थात् इस मन्त्र में केवल उन लोगों के लिए उपदेश है जो

अनात्मज्ञ हैं अर्थात् जिन को आत्मज्ञान नहीं हुआ और जो अशक्त अर्थात् सामर्थ्यहीन है । इसका स्पष्ट तात्पर्य यह निकला कि वेद में जहां कहीं कर्मों का गौरव दर्शाया गया है वह केवल मूर्ख अशक्तों के लिए है । जो विज्ञ हैं वह कर्मों की कर्तव्य से ऊपर हैं । इस पर शांकर मत में ज्ञान काण्ड को कर्मकाण्ड से पृथक् कर दिया गया और ब्रह्मज्ञों के मन में कर्म की आवहेलना बैठ गई । इसी मन्त्र की व्याख्य के अन्त में श्री शांकर भाष्य में एक प्रश्न उठाया है- **कथं पुनरिदमवगम्यते पूर्वेण सन्यासिने ज्ञाननिष्ठो क्ता द्वितीयेन तदशक्तस्य कर्मनिष्ठेति** । अर्थात् यह कैसे ज्ञात हुआ कि पहले मन्त्र 'ईशावास्य' से संन्यासी की ज्ञाननिष्ठा और दूसरे मन्त्र 'कुर्वेन्ने' से ज्ञान की सामर्थ्य से अशक्त की कर्म निष्ठा अभिप्रेत है ? वस्तुतः यह प्रश्न तो समीचीन ही था कि वेद के इन दोनों मन्त्रों में से किसी शब्द से यह विदित नहीं होता कि पहला मन्त्र ज्ञानियों के लिए है और दूसरा अनात्मज्ञ के लिए । परन्तु भाष्यकार ने इसका यह उत्तर दिया है- 'उच्चयते ज्ञानकर्मणाविरोध पर्वत वादकम्पां यथोवतेन स्मरसि किम् । क्या तुम को हमारी यह बात याद नहीं रही कि ज्ञान और कर्म का परस्पर विरोध तो पहाड़ के समान अकम्प या अटल है । वस्तुतः यह शंका का समाधान नहीं समाधाना भास मात्र है । ज्ञान और कर्म एक दूसरे के विरोधी नहीं अपितु एक दूसरे के पूरक हैं । ज्ञाननिष्ठ हीकर्मनिष्ठ होसकता है । और ज्ञान निष्ठ ही 'माते संगोऽस्त्कर्मणरू' का पालन कर सकता है । गीता के भक्त भी तो यही कहते हैं कि भगवान कृष्ण ने अर्जुन को कर्म की भावना से मुक्त करने और कर्मनिष्ठ बनाने के लिए गीता का उपदेश किया था । जिनमें कर्म की निष्ठा है वह अज्ञानी नहीं है । जो ज्ञान से शून्य हैं वे कर्मनिष्ठ कैसे होंगे । भगवान् ने हमारे शरीर में ज्ञानेन्द्रियां और कर्मेन्द्रियां दोनों ही दी हैं । वे एक दूसरे के पूरक हैं विरोधी नहीं और न उनका विरोध पर्वत के समान अटल है । जब ज्ञान और कर्म में पर्वत के समान अकम्प विरोध हो उठता है और मस्तिष्क तथा हाथ-पैर एक दूसरे के विरोधी हो जाते हैं तो इसको पागलपन की दशा ही कहते हैं । ज्ञान और कर्मेन्द्रियों का परस्पर विरोध केवल पागलों में मिलता है, ज्ञानियों में नहीं । इस प्रकार के निराधार और काल्पनिक भाष्य वैदिक संस्कृति के ह्रास के कारण ही सिद्ध हुए हैं । यह वेद मन्त्रों के आशय को न समझने अथवा कल्पित

...पृ. ७ का शेष

भावनाओं के अध्यारोप के कारण हुआ है। वस्तुतः यह वेदमन्त्र कर्म के गौरव को बताता है और स्पष्ट शब्दों में कहता है कि यथेष्ट कर्मों की इच्छा करके जीना और उन कर्मों का यथाविधि पालन करना सब कर्म के बन्धनों के छुटकारे का साधन होगा। यहां एक बात स्पष्ट कर देनी चाहिए। श्कर्मकाण्डश के अर्थों में भी बहुत कुछ विकार हुआ है। श्री शंकर स्वामी के समय में कर्मकाण्ड का केवल यही अर्थ लिया जाता था कि यज्ञों के विषय में प्रचलित कुछ क्रियाएं करना, जैसे पात्र साफ करना, वेदी बनाना, अमुक मन्त्र पढ़कर चावल निकालना या पकाना या अमुक मन्त्र पढ़कर अमुक आहुति देना। यह कर्म काण्ड का सम्भव है कि किसी अंश तक बाह्य रूप रहा हो परन्तु यह वास्तविक कर्म काण्ड नहीं है केवल हल को एक मन्त्र पढ़ कर उठा लेने का नाम कृषि कर्म नहीं है और न व्यापार-सम्बन्धी किसी मन्त्र के पढ़ देने का नाम व्यापार है। कितनी समिधा कितनी बडी हो या कर्म काण्ड नहीं।सम्भव है कि वेदनुयायी को ऐसे निरर्थक कृत्यों से बचाने के लिए शंकर स्वामी ने इस प्रकार के तर्कों का प्रयोग किया हो क्यों कि उस युग के कुमारिल भट्ट या मण्डन मिश्र आदि ऐसे ही कर्म काण्ड के प्रचारक थे। और महात्मा बुद्ध आदि ने इसी जाल से मनुष्यों को सुरक्षित रखने के लिए वेदों का विरोध किया था। परन्तु यह तो कल्पित उपचार था जिसने एक रोग दूर करने के लिए दूसरा रोग उत्पन्न कर दिया। कर्म के जाल से छूटने के प्रयत्न में लोगों को नास्तिक बना दिया। कर्म काण्ड के जाल से छूटे तो मायाजाल के शिकार होगए। इससे कर्म का बन्धन तो नहीं छूटा। कर्म (वैदिक कर्म) अवश्य ही छूट गए। देश निरूद्यम होगया। कर्म और ज्ञान के बीच अकम्प पर्वत खड़ा हो गया। परन्तु यह पर्वत भाष्यकारों की कल्पना का फल है। कर्म काण्ड और ज्ञान काण्ड के बीच से इस व्यवधान को हटाने की आवश्यकता है और यह बात केवल यथेष्ट स्वाध्याय से ही पूरी हो सकती है।

मृत्यु के षडयन्त्र के कारणों में देश को आजाद कराने में उनके कान्तिकारी विचार भी सम्मिलित हैं। धार्मिक, सामाजिक, शारीरिक उन्नति वा सुधार सहित देश की आजादी में स्वामी दयानन्द जी का सर्वोपरि योगदान है। यदि वह न आते तो इन सभी क्षेत्रों में देश की क्या स्थिति होती? इसकी कल्पना करना आसान नहीं है। जो भी होता, स्थिति वर्तमान से अधिक खराब होती, ऐसा हम अनुमान करते हैं।

स्वामी दयानन्द के आने से पूर्व देश के हिन्दुओं का ईसाई व मुस्लिम मत में बिना रोकटोक ध र्मान्तरण व मतान्तरण किया जाता था। हिन्दू किसी विधर्मी के हाथ का पानी पी ले तो उसका धर्म नष्ट हो जाता था। किसी गांव के कुंवे में विधर्मियों ने गोमांस डाल दिया। अज्ञानतावश वहां के हिन्दुओं ने उस कुंवे का पानी पी लिया तब भी गांव के सभी हिन्दू, हिन्दू न रहकर, विधर्मी मान लिये जाते थे। हिन्दुओं का छल, कपट व प्रलोभन आदि के द्वारा धर्मान्तरण होता था। आर्यसमाज ने प्रचार किया मनुष्य भविष्य में शारीरिक व मानसिक अशुद्धि का कोई कार्य न करने का संकल्प लेकर वैदिक सनातन धर्म में बना रह सकता है। आर्यसमाज ने धर्मान्तरित लोगों को पुनः स्वधर्म में लाने का भी प्रशंसनीय कार्य किया है। ऋषि दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ लिखकर वैदिक मान्यताओं को प्रस्तुत किया है। इसके साथ उन्होंने सभी मतों की मिथ्या मान्यताओं को प्रस्तुत कर उनका युक्ति व तर्क के आधार पर खण्डन व समीक्षा भी की है। इससे लोगों के सामने अन्य मतों की मिथ्या मान्यताओं का प्रचार व प्रकाश हुआ। जहां भी धर्मान्तरण की घटनायें होती थी, वहां आर्यसमाज के विद्वान पं. लेखराम, स्वामी श्रद्धानन्द जी व ऋषि के अनुयायी विद्वान व कार्यकर्ता पहुंच जाते थे और स्वजाति बन्धुओं को समझाते थे। वह विधर्मियों को शास्त्रार्थ की चुनौती देते थे। इससे देश में छल, कपट व प्रलोभन से मतान्तरण कम हुआ और अनेक विधर्मी भी आर्य व हिन्दू बनने लगे। इस कार्य को शुद्धि कहते हैं। इसे ऋषि दयानन्द जी व आर्यसमाज ने ही प्रवृत्त किया है। इससे हिन्दू मत व धर्म समाप्त होने से बच सका। इसका श्रेय भी ऋषि दयानन्द के आगमन व उनके कार्यों को ही है।

ऋषि दयानन्द ने हिन्दू जाति की रक्षा के लिए अनेक उपाय किये। इस संक्षिप्त लेख में सबको बताया नहीं जा सकता। संक्षेप में इतना ही कह सकते हैं ऋषि दयानन्द ने निर्जीव हो चुकी हिन्दू आर्य जाति में प्राण फूंक कर उसे पुनर्जीवित किया। उसे शिक्षा व संस्कार दिये। अहिंसा का यथार्थ अर्थ समझाया। लोगों को सबसे प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार और यथायोग्य व्यवहार करने की शिक्षा दी। दूसरों से यथायोग्य व्यवहार करना हिन्दू जाति भूल चुकी थी। इस सिद्धान्त को देने वाले भी ऋषि दयानन्द ही हैं। यदि इस सिद्धान्त को न अपनाया जाये तो सत्य दबा दिया या कुचल दिया जाता है। सत्य की रक्षा के लिए यथायोग्य व्यवहार भी अनेक परिस्थितियों में आवश्यक होता है। हम इतना ही कह सकते हैं कि ऋषि दयानन्द के आने से आर्य हिन्दू जाति प्राणवान व बलवान हुई व उसकी रक्षा हो सकी है।

Contribution of Vedic Thought to World Peace

-Prof. Satyavrata Siddantalankar

THE PROBLEM : Since the dawn of creation the world is torn between two conlicting emotions and thoughts-love and hate. A person loves those, who he thinks, will help him in the realization of his interests, and hates those, who are likely to oppose him in the fulfilment of his ambitions. Thus two orders are created with regard to an individual, group, society, nation and the country. An individual forms friendship with persons who share common interests with him. He loves them. He might also come across persons, who act as obstacles in the path of the fulfilment of his ambitions. He hates them. The same principle applies to families, groups, societies, nations and countries. On the one side, are arrayed those who are with us and, on the other side, are arrayed those are against us. Our reactions are : those who are not with us are against us. We are at peace with those who are with us and are of war with those who are against us. We are at peace with those who are with us and are at war with those who are against us. The more are we extend our area of common interests with others the more we are at peace. The more we maintain our separate existence, the larger is the possibility of conflict of interest with others resulting in want of peace.

There is no denyiny the fact that man whether as an individual, as a part of a family, a group, a society, a nation or a country-in the long run wants peace and harmony. The ultimate object is to bring heaven on earth by the materialisation of the long cherished dream of one World where there may be no conflict, no war and where peace should reign supreme. But the problem is : has been successful in ushering in the era of millennium by unification of all the conflicting force of the world. If not, why not ?

With a retrospective look on history we observe that there have been several attempts aiming at the unification of the world at various levels. There attempts can be classified as :

a) At Physical level, which means the use of military force.

b) At Socio-economic level, which means the removal of social and economic inequalities by taking possession of the power of State..

c) At semi-spiritual level, which means the use of religion supported y military might, and

d) At Spiritual level, which means the realization by the individual of the Principles of Brotherhood of Man and common interests of Mankind.

Let us see how these attempts have fare.

Idia of one World at Military Level.

The pre-condition of peace is unity and to that an mighty men of the world have harnessed their military power to crush by violence all that stood in their way. Alexander the Great trod under foot country after country and tried to subjugate every kingdom. This was an experiment in creating the concept of One World by eliminating the existence of alternate power, where unity should prevail and no room left for dissensions and complects, which disturbed peace of the world. Alexander failed and the World could not become One. Nepolean embarked upon similar course. His genius was unequalled. He tried to level down the carriers that separate one country from another and one nation from another nation. This experience also rested on hatred and violence. Thous often victorious, ultimately he found himself escoused in St. Helena the world remained as it was-not One, but a found himself escoused in St. Helena the world remained as it was-not One, but a conglomeration of many conflicting interests, running through different countries and nations.

In recent history we had two World Wars-the declared object of both which was to ead the threat of war forever. The first World War started in 1914 and ended in 1918, leaving a bitter legacy which convinced the nations of the world that haired, violence and war could never by instrumental in cementing the conflicting claims and interests of nations. Having realised that permanent peace on earth can never be established by resorting to violence, the World leaders set themselves to the task of evolving the principles upon which peace foundations of the world could be safely laid. This resulted in the treaty of Versaliles of 1919, establishing The League of Nations with the avowed object of International Peace. This organisation set up after the First World War to promote international cooperation and to achieve international peace and security, failed to enforce its decisions and was consequently unable to prevent the Second World War of 1839-1945. The intervening period between the two World Wars from 1920 to 1938 was utilised by the Nations for preparing for another devastating world war which was fought between the Axis and Allied Powers during 1939-1945. During the course of the

cont....on 17

आर्य प्रतिनिधि सभा आ.प्र.-तेलंगाना के द्वारा दि. 24-12-2023 रविवार के दिन पंडित नरेन्द्र भवन में आयोजित साधारण सभा में

प्रो. विट्ठल राव आर्य सर्वसम्मति से

आर्य प्रतिनिधि सभा आ.प्र. - तेलंगाना के

पुनः प्रधान निर्वाचित ।

श्री हरिकिशन वेदालंकार जी सर्वसम्मति से मन्त्री निर्वाचित ।

आर्य प्रतिनिधि सभा आन्ध्रप्रदेश -तेलंगाना, सुल्तान बाजार, हैदराबाद के चुनाव सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली के पर्यवेक्षक एवं चुनाव अधिकारी श्री जितेन्द्र पुरुषार्थी के देख-रेख में दि. 24 दिसम्बर 2023, रविवार के दिन पं. नरेन्द्र भवन में सम्पन्न हुए । इस चुनाव को सम्पन्न करवाने के लिए श्री जितेन्द्र पुरुषार्थी जी नई दिल्ली से सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के पर्यवेक्षक के रूप में पधारे हुए थे । सदन में अन्य कार्यवाहि को पूरा करने के बाद चुनाव सम्बन्धित विषय पर सम्पूर्ण आन्ध्र व तेलंगाना प्रान्त से आर्य समाजों द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि बड़ी भारी संख्या में पधारे हुए थे । बडी देर तक चर्चा व बहस के पश्चात सभा के लिए पदाधिकार्यों तथा कार्यकारिणी के चुनाव के लिए सर्वसम्मति से चुनाव करवाने का निश्चय किया गया । इसके पश्चात चुनाव अधिकारी श्री जितेन्द्र पुरुषार्थी के नेतृत्व में सर्वसम्मति से चुनाव सम्पन्न हुए ।

इस चुनाव में प्रधान पद के लिए प्रो. विट्ठल राव आर्य एवं मंत्री पद के लिए श्री हरिकिशन वेदालंकार सर्वसम्मति से निर्वाचित हुए । भारी संख्या में पधारे हुए प्रतिनिधियों ने तालियों के गड़गड़ाहट से सर्वसम्मति से निर्वाचित प्रधान प्रो. विट्ठल राव आर्य जी तथा मन्त्री श्री हरिकिशन वेदालंकार जी का स्वागत किया ।

उपप्रधान पद पर सर्वश्री ठा. लक्ष्मण सिंह जी, श्री बी. शिवकुमार जी, डॉ. चन्द्रय्या जी, डॉ. वसुधा शास्त्री जी, श्री डी. वेंकट नरसय्या जी, श्री कृष्णा रेड्डी जी, श्री अशोक कुमार श्रीवास्तव जी तथा राष्ट्रपति रोड़ आर्य समाज के प्रधान श्री माशेट्टी श्रीनिवास जी उपप्रधान पदों पर सर्वसम्मति निर्वाचित घोषित किए गए । इसी प्रकार चुनाव में बिना किसी विरोध के उपमंत्री पद पर सर्वश्री पी.सत्यनारायण जी, श्री बण्डी किशनराव जी, श्री नरेश कुमार जी बान्सवाडा, श्री रामचन्द्र जी ज़हीराबाद, श्री एम.सुधारकर जी, श्री आर. अशोककुमार जी, श्री जे.बसिरेड्डु जी तथा ठा. दिनेश सिंह जी उपमन्त्री पदों पर सर्वसम्मति से निर्वाचित हुए । श्री जी. मल्लिकार्जुप्पा जी कोषाध्यक्ष के लिए एवं पुस्तकाध्यक्ष के लिए श्री डॉ. विश्वश्रवाः जी सर्वसम्मति से निर्वाचित हुए ।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा नई दिल्ली के लिए प्रतिनिधियों का चुनाव भी सर्वसम्मति से सम्पन्न हुआ । श्री प्रो. विट्ठल राव आर्य, श्री हरिकिशन वेदालंकार जी, श्री बी.शिवकुमार जी, श्री वेंकट रघुरामुलु जी एडवोकेट, श्री एन. अशोक कुमार जी एडवोकेट, श्री ठा. लक्ष्मण सिंह जी, श्रीमति डॉ. वसुधा शास्त्री जी, श्री रामचन्द्र जी ज़हीराबाद, श्री बंडी किशनराव जी, श्री डी.वेंकटनरसय्या जी, श्री जे.बसी रेड्डी जी, श्री अशोक कुमार श्रीवास्तव जी, श्री जी.मल्लिकार्जन जी, श्री गोपाल रेड्डी जी नलगोण्डा तथा डॉ. सी.एच. चन्द्रय्या जी निर्विरोध सर्वसम्मति से सार्वदेशिक प्रतिनिधि सभा के लिए प्रतिनिधि के रूप में निर्वाचित हुए ।

चुनाव के उपरांत अधिकारिक तौर पर चुनाव अधिकारी श्री जितेन्द्र पुरुषार्थी जी ने उपरोक्त निर्वाचित अधिकारियों के नामों की, सार्वदेशिक सभा के लिए निर्वाचित प्रतिनिधियों की और प्रान्तीय सभा के लिए निर्वाचित अन्तरंग सदस्यों के नामों की घोषणा की तथा सभी से संकल्प करवाया जिसका उपस्थित सभी सदस्यों ने करतल ध्वनी से सभी का स्वागत किया । चुनाव अधिकारी श्री जितेन्द्र पुरुषार्थी जी ने उपरोक्त प्रतिनिधियों को तथा सभा में उपस्थित सभी सदस्यों से कहा कि निर्वाचित सभी अधिकारी एवं सदस्य आपस में किसी भी प्रकार का मनभेद न रखते हुए सहयोग तथा प्रेम से आगे ३ वर्षों तक के लिए एक जूट होकर आर्य समाज के कार्य को जन-जन तक पहुँचाने का संकल्प लें और कर्मठता से कार्य करें ।

ज्ञात हो कि आर्य प्रतिनिधि सभा आ.प्र.-तेलंगाना की चुनाव प्रक्रिया पिछले पूरे ६ माह से चल रही थी । सार्वदेशिक सभा के नियमानुसार तथा आर्य प्रतिनिधि सभा आ.प्र.-तेलंगाना और आर्य समाज के लिए बने संविधान के अनुसार चुनाव प्रक्रिया को पूरी तरह प्रजातान्त्रिक तथा पारदर्शी तरीके से चलाया गया । नियमों की पूरी प्रक्रिया को पूरा अवसर प्रदान करते हुए प्रतिनिधि सभा के चुनाव को सम्पन्न करवाया गया । आर्य जगत् को यह भी विदित करना हम अनिवार्य समझते है कि चुनाव के समय बाकायदा नाम का प्रस्तावित करना, उसका अनुमोदन करना तथा नाम के वापस लिए जाने की पूरी प्रक्रिया को भी अपनाया गया । सार्वदेशिक सभा की ओर से पधारे पर्यरक्षक श्री जितेन्द्र पुरुषार्थी जी पूरी प्रक्रिया को नियमानुसार सम्पन्न कर आर्य जगत् में एक उदाहरण पेश किया है । उन्होंने अपील की कि आर्य जगत् में हर प्रान्त की प्रान्तीय सभाएं व आर्य समाजें संवैधानिक तथा नैतिक नियमों का पालन, अपना दायित्व

निर्वाचन के बाद के चित्रों में अधिकारीगण व चुनाव अधिकारी श्री जितेन्द्र पुरुषार्थि जी

उपप्रधान श्री ठाकुर लक्ष्मणसिंह जी

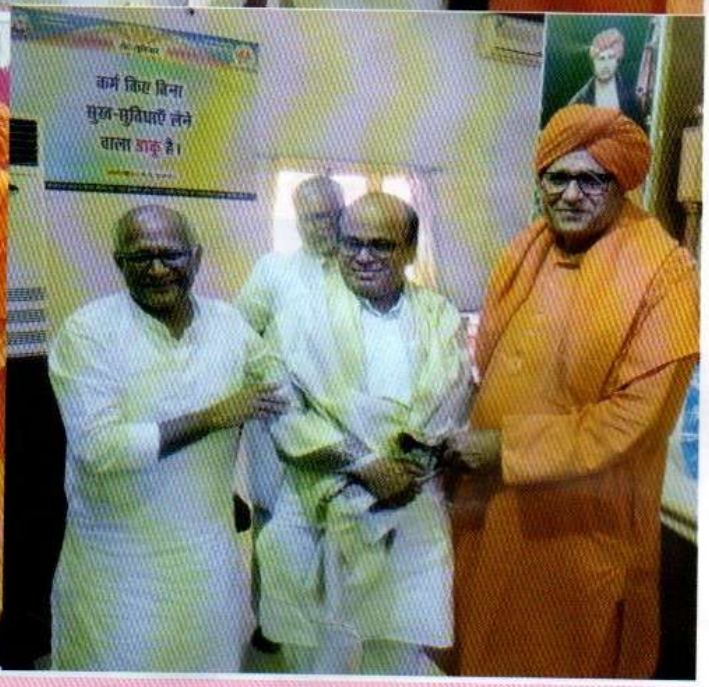

निर्वाचन के बाद के चित्रों में अधिकारीगण व चुनाव अधिकारी श्री जितेन्द्र पुरुषार्थि जी

उपप्रधान श्री माशेट्टी श्रीनिवास जी

उपप्रधान श्री अशोक श्रीवास्तव जी

उपप्रधान डॉ. वसुधा शास्त्री जी

उपप्रधान श्री डॉ.सी.एच.चन्द्रय्या जी

उपप्रधान श्री बी.कृष्णा रेड्डी जी

उपप्रधान श्री डी. वेंकट नरसय्या जी

उपप्रधान श्री बी.शिवकुमार जी

कोषाध्यक्ष श्री जी.मल्लिकार्जुन जी

पुस्तकाध्यक्ष श्री डॉ.विश्वश्रवः जी

उपमन्त्री श्री नरेश जी

उपमन्त्री श्री आर.अशोक कुमार जी

उपमन्त्री श्री एम.सुधाकर जी

उपमन्त्री श्री रामचन्दर जी

उपमन्त्री श्री बण्डी किशनराव जी

उपमन्त्री श्री जोन्नला बसिरेड्डी जी

उपमन्त्री श्री ठाकुर दिनेश सिंह जी

उपमन्त्री श्री पी.सत्यनारायण जी

श्री अनन्तय्या जी

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान स्वामी आर्यवेशजी हुमनाबाद आर्य समाज में साथ में श्री सुभाष अष्टीकर जी एवं आर्य समाज के अधिकारीगण

Second World War the leading International Personalities realized that the League of Nations had not served its intended purpose and that a second look at the whole problem was necessary. After the end of the Second World War a new international organisations was set up-The United Nations Organisation. This Organisation was founded in San Francisco (USA) in 1945 under a permanent charter ratified by 50 countries who were opposed to the Fascist coalition of Germany, Japan, Italy and their satellites. Now its membership has gone up to 126. After the formation of the U.N.O. the League of Nations was dissolved in 1946.

Though the formation of the United Nations Organisation was a right step in the right direction, yet the question still holds good : Has the era of peace dawned upon the World ? Has war disappeared ? So far as India is concerned, Pakistan has attacked India three times. One in 1947, Pakistan usarped a part of Kashmir which question is still hanging fire in U.N.O. Again in 1965, Pakistan declared war against India without provocation. And yet again on 3rd December, 1971. Pakistan declared a total war against our country. Earlier, China had comitted aggression against India in 1962. Besides, there have been frequent wars between Egypt and Israel, North and South Korea and Vietnam, Cambodia and Laos etc., What has the United Nations Organisation done to prevent these wars except indulging in debates in the Security Council where the decision one way of the other could be vetoed by either of the 5 Great Powers. The concept of veto itself means that the interest and ambitions of the vetoing power are safe guarded. Where interests and ambition step in-be it in the matter of individual, family, group, society, country or nation-peace remains a remote dream.

Inspite of the United Nations Organisation piles upon piles of Atomic bombs are accumulating. Countries are vying with one another in increasing their devastating potential and a major part of their revenue is spent upon stock piling the lethal weapons. They talk of peace but prepare for war. The intervening period between the war and the other is a period of platitudes for peace but, in fact, it is a period for equiping oneself for a war which, they have always claimed, will end war but has never succeeded in ending war.

Very recently on 19th October, 1975, when Dr. Kissinger, U.S. Secretary of State, visited China to prepare ground for the visit of Mr. Ford, the President of United States, Mr. Chiao Kuanhua, Foreign Minister of China remarked : "The only way to deal with hegemonism is to wage a tit-for-at struggle against it. To base oneself on illusions, to make hope or wished for reality and act accordingly will only abet the ambitions of expansionism and lead to grave consequences. The stark reality is not that detente has developed to a new stage, but the danger of a new world war is mounting".

The same day Mr. Kewal Singh, India's Foreign Secretary, urged at a United Nation's forum that the current hot-beds of conflict and situations of strife should be ended in full implementation of the U.N. declaration on strengthening international security.

We are still moving in the dreaded atmosphere of fear of tit-for-tats and new wars as well as in the atmosphere of 'shoulds' after 30 years of the founding of United Nations Organisation.

Idia of one World at Socio-Economic Level.

Another attempt at World unification to ring about lasting peace has been made at social and ecoomic level by socialist and communist philosophers headed by Karl Marx. According to them, the peace of the world is disturbed due to social and economic inequalities. As the rich gro richer social status also changes resulting in economic and social stratification. Some stand higher and some stand lower in the scale of social structure which gives rise to social conflict and disturbance of world peace. As people with vested interests cannot be willing to part with power, so by resorting to class war the conflicting element of social and economic inequality is eliminated and an equilibrium is established. This experiment has been tried mainl in Russia and China, following into the footsteps of those who taught that was was biological necessity. Just as Alexander and Napolean resorted to war against the countries of the world and relied on military force and violence to establish an Empire of their own, which was their onception of World peace, similarly leaders of Russian and Chinese revolution relied on violent methods and established a government in their respective countries of their choice. aving done so, these two Protagonists of world peace, though ideologically repeating the same Mantrams stand face to face to fly at each other's throats at a moment's notice. It is not strange that these two nations, professing the same ideology, abuse each other as reactionaries and revisionists and are regarded as bitterest eneies. The reason is not far to seek. s they have achieved their objectives through violence, they cannot get rid of that madness. Realizing that the only weapon left in the armoury of the Western Nations for the achievement of the idea of One World is military force, Bertrand Russel in a pessimistic, subjective mood wrote in 'Atlantic Monthly' in March issue of 1951. I quote :

"The world is in a state of international anarchy for which the

only solution is a world government or a world empire. The British Commonwealth and the United States must be convinced of the military unification of the world. They should then offer to all other nations the option of entering into a firm alliance in which resoures will be pooled and defence against aggression assured. After a reasonable measure if consolidation has been achieved, recalcitrant nations should be declared public enemies. If they yield, the threat of force succeeds; if the do not, war decides the issue."

Mr. Rund favoured the United States, but was of opinion that even a world empire of USSR would be preferable to the present international anarchy. Anold Toynbes who recently dies, was also strong advocate government.

So, this is where we have come to. First it was Alexandar the Great; then Napolean; then the League of Nations; then the United Nations Organisation; then Marxism-Leninissm; then Bertrand Russel's advice of despair-but all this through military dictatorship the objective being One World, One Government, One Empid for the achievement of peace of the world.

Idia of one World at Semi-Spiritual Level.

The third attempt at the One World concept was made the Christainity and Islam by spreading their religions throughout the length and breadth of the worle, Christ preached Universal Brotherhood of man and his followers took his message to every book and corner of the world and were to some extent successful in removing the barriers between mand and man. But Christainity spread and the Church became an Institution and the authority was vested in the Pope, worldly interests were reated with the result that the atmosphere of peace generated by the teachings of Christ became vitiated. Luther revolted against the vested interest of the Pope and established a protest and organisation. The unity established by the Church in various countries fell to pieces as everywhere the Church was split into Roman Catholics and Protestants. At this time the Pope took to violence and no stone was left unturned to suppress the hereties-Protestants. The chasm between the Catholics and Protestants assumed the form of regular torture of Protestants by Catholics. Latimer-a Protestant bishop was put to death by the order of the Church and was burnt alive. Ecclesiastical Inquisition was instituted to suppress the non-believers in the dispensations of the Holy Church and the heretics were guillotined. Both the eras Reformation and Renaissance which brought in freetics were guillotined. Both the eras Reformation and Renaissance-which brought in freedom of thought and intellectual light in Europe, were met with violent resistance by the Church. Not only the so-called Christian heretics were killed but even men of science, who since then have changed the shape of the globe, were done to death. Bruno, whor propounded heliocentric theory, was arrested at Venice by the order of the inqisition, imprisoned for two years and then burnt alive at the stake in Rome. Galleo proclaimed that instead of the sun moving round the earth, the earth moved the sun. He was but in prison and was released when he retracted from this theory as if milited against the conception of Christainity.

Islam also started its career of bringing, oneness to the world by coercion. It went on spreading its message at the point of the sword. Jehad was its driving force.

Both Christainity and Islam, tough spiitual forces in their inception, became semimilitary by the passage of time. Hence their call to the world was semi spiritual as it was based not so much on voluntary acceptance of the principles of these religions but on their potentiality for violence and the threat of loss of life. Oneness, which is resultant of fear, cannot be lasting factor for cementing mankind as is evident from Christain and Islamic countries fighting against one another. Peace brought in by coercion cannot be peace of heart. As Christainity and Islam have used military power through crusades and jehads, hence we have styled their efforts as semi-spiritual. Any way, these forces have creased to be potent factors in the present set up for ushering in an era of One World.

Idia of World Peace of Spiritual Level.

The only country which has used unmitigated spiritual power in the cause of developing the concept of One World without using even a modicum of force is India. More than two thousand years ago, Ashok, the Indian Emperor, launched a scheme of world unifcation and sent his emissaries of peace, to every book and corner of the globe, with a message "Man has remained till now an enemy of an and has divided mankined into separate castes, creeds and nations. He has derived nothing from it other than jealousy, hatred, bickering and distrust which have culminated in struggles and war. The time is now ripe when we may forget the caste, creed and nation of country. Let us remember that our country is the whole world and oru nation includes all mankind.

It was in 3rd century B.C. that Ashok delivered the message not of the sword but of the milk of human kindness, not of the ego but of the spirit. At the time of Ashok a Great Assembly Mahasabha was held, presided over by Mauggaliputta Tishya when learned men were sent to four corners of the earth to carry

the message of Universal Brotherhood. He sent his son Mahendra and his daughter Sanghamira to Ceylon. After that waves after waves of missionaries saturated with the teaching of Ahinsa and non-violence preached by Budha left the shores of India in every direction of the world with the result that Assam, Burma, Bali, Cambodia, Java, Sumatra, China, Japan, Tibet, Eastern Asia, Western Asia, Easter Turkistan all were knit with the silver chord of brotherhood, and the concept of One World, so far as it could be possible in those days of great distances and want of means of communication was almost achieved. The spirit behind this achievement is well illustrated by an annecdote which has come down by tradition. Hiuen Tsang, a famous Chine pilgrim came to India at the time of Harsh in A.D. 630. He staed here for 12 years and collected a lot of precious Budhist manuscripts to carry them to his country. While returning to China through the Bay of Bengal he had two young Budhist monks with him-Gyangupta and Tyagraj-in the vessel carrying him. Whie the vessel was in mid ocean a storm raged and the captain of the vessel ordered that to save life pilgrims should unload the huge precious load of books when these two young monks intervened. They remonstrated with the pilgrim saying that these books may be the source of dispelling darkness in many hearts of generations to come and so rather than the books the lost the would prefer to lighten the burden of the vessel by jumping into the ocean. Hiuen Tsand was about to protest when, of ten and behold, the two young monks were lost into the surging waves of the ocean. At this sacrifice Hiuen Tsand was lost in thought and silently bowed his head to the land from which he was carring the message of peace and brotherhood to his motherland.

It is unfortunate that at the time of Harsh, Budhism had spl t into Hinayan and Mahayan and dissensions arose in Budhism itself. Besides Budhism and Hinduism came to clash, so mueso, that an assasin was hire by some Brahmans to kill Harsh for his love towards Budhism. Harsh escapted the assault but ultimately he was mrdered by his own minister Anjun. However, Budha's message of love, non-violence and Ahinsa had gone for into different corners of the earth and an unofficial United, Non aggressive atmosphere prevailed in far eastern regions of the globe as well as on Western borders of India. Budha's message was the message of the sains and sages of India, the message of Rishis of yore, the message of Patanjali of Yoga philosophy, the message of the Vedas. The Vedas declare :

शृण्वन्तु सर्वे अमृतस्य पुत्राः । -यजुर्वेद ।११-५।

"Hark ye, all men children of the Immortal Divine ! Decendants of common heritage, that they are all one. The Rig Veda says :

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसिजानताम् देवाः भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ।-ऋग्वेद ।१०-१९२-२

Your thought should be in harmony with each other, your speech should be in harmony with each other, your action should be in harmony with each other. This is how your elders realizing their responsibility played their part in society. And again :

समानी प्रया सह योऽन्नभागः समाने योत्ते सह वो युनाज्मि सम्यन्चो ऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः । -अथर्ववेद ।३।३०।६

You should drink together, eat together, live together as if joined in a common yoke. Just as the pokes rotate fixed in a common axle similarly you shoud feel yourselves fixed in social organisation worshippin God who manifests himself in the form of sacrificial fire Agni. And again :

वस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति। सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विचि कित्सति।

-यजुर्वेद ।४०-६।

One who sees all creatures as if they were his own selves and himself in others-his mind rests in peace with no doubts to disturb it. And again :

अयुतोदऽहम् अयुतो म आत्मा अयुतं मे चक्षुः अयुत मे श्रोत्रम् । अयुतो मे प्राणाः अयुतो मे व्यानः अयुतोऽहम् सर्वः । -अथर्व १९-५१-१

I am not one but am millions; myself I see in millions of beings. These millions upon million of eyes, ears, lives are but my eyes, my ears, lives. I see myself at one with the countless lives of the earth-they are me and I am they. And again :

विश्व आशा मम मित्रम् भवन्तु ।

-अथर्व वेद ।१९-१५-८

In whatever direction I turn my eyes I look upon every one as my friend.

In Atharva Veda, one of the Chapters (3.30) styled as Samanasya Sukta (सांमनस्य सूक्त) Universal Harmony of mind-is entirely devoted to the cultivation of equilibrium in society. It visualizes a social organisation in which there is harmony of head and heart among the components of society and conflict-सहृदयम् सांमनस्यम् अविछेषम् कृणोमि, व-and in which men and women live as brothers and sisters-'मा भ्रातर भ्रातरं द्विक्षन् मा स्वासारमुत स्वसा' it exhorts the people of the world to love one another as the cow loves her first-born- अन्योऽन्यम् अभि हर्यत वत्सम् जातम् इव अघून्या' ।

And further, in Atharva Veda (12-1-45) it is stated :

जनं विभ्रती बहुधा विवाचसं नाना धर्मणामृ पृथिवी यथौकसम् । सहस्त्र धारा प्रविणस्य मे दुहां धुवेव धेनुः अनयस्फुरन्ती ।

Just as a household with men and women speaking different tongues and holding diverse thoughts remains a unit undivided-'यथौवसम्-similarly this earth of ours people with men of different languages and different viewes should remain a unit undivided. And then, just as a cow standing steady yields milk in a thousand streams, so the earth will yield its wealth in a thousand different manner.

And again in Atharva Veda 12-1-60 we read :

भुजिष्यं पात्रं निहितं गुहा यत् आविर्भोगे ऽ भवत् मातृमद्भ्यः ।

All the enjoyable wealth that is hidden in the bowels of the earth is meant to be unearthed for the enjoyment of one and all who are born of the mother's womb, those who are मातृमत्. It is a very novel idea of saying that provision per head, clothing and shelter is every body's birthright.

In Atharva Veda 12-1-1 the fundamental principles that should guide the seekers of One World idea are beautifully envanciated. It says that the basic factors that can sunstain the peace of the earth are :

1. Truth-सत्यम 2. Law-ऋतम्

3. Vow of service-दीक्षा

4. Austerity-तपः 5. Faith-ब्रह्म

6. Sacrifice-यज्ञः

सत्यम् बृहत्, ऋतम् इम्रम्, दीक्षा तपो, ब्रह्म, यज्ञ, पृथिवीं धारयन्ती ।

The cementing forces that can sustain the peace of the earth are-Truth, the irrevocable and inexorable Law, Vow for the Service of Mankind, living a Simple and Austere Life, Faith in the Universal Divine Power and Selflessness to the extent of sacrificing one's interests for the welfare of others. Conversely, untruth, Lawlfishness, Luxury, Denial of the Supreme Power and Violence destroy the earth. The worldtoday is surely in need of peace which is including its grasp simply because we appland Truth but practice Falsehood, we exhort others to honour the Law but break the sel-same law where we are concerned, we preach our fellowmen to take a vow of service but ourselves we are saturated with selfishness, we admonish others to live an anster life but we roll in luxury. This contrariness in our character is due to the fact that we have no faith in the Spiritual Power which supervises over all that lives and moves and has its being.

The Preamble to the constitution of UNESCO being with the following words :

"Since wars begin in the minds of men, it is in the minds of men that defences of peace must be constructed."

How true. The constitution makes of UNESCO did correctly diagnose the malady. It is very true that war and peace originate in the mind of man. But did they correctly apply the remedy ? Representatives of far-fluing countries sit together in Assembly halls of United Nations but though physically seated next to one another they are as distant in mind as the geographical boundaries of their countries. How could you expect of peace in such a situation.

In daily Agnihotra a devotee of Vedic culture recites atleast 25 mantrams from the Vedas the burden of the song being Shanti, Shanti-Peace, Peace-one of the Mantras being :

ओ३म् द्यौः शान्तिः अन्तरिक्ष शान्तिः पृथिवी शान्तिः राप शान्तिः । ओषधम्ः शान्तिः वनस्यतयः शान्ति विम्वेदेवाः शान्तिः ब्रह्म शातिः सर्व शान्तिः । शान्तिरेव शान्तिः सा या शान्तिरेधि । ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः

Let there be peace in the heavens, peace in the outer space, peace on earth, peace in oceans, peace in forests where shrubs, herbs and trees grow. Let there be peace in the organs and minds of every living creature. Let there be peace eternal, in and out, here, there and everywhere. Let there be peace and nothing but peace in every nook and corner of the world. Let that peace enter into me-Peace, Peace and Peace.

After hearing this, need I tell you what is the contribution of Vedic thought towards world peace.

It is in the heart, it is in the mind that the seed of peace can be grown and cultivated. It is there that it sprouts, grows and bears fruits. The Upanishadic Rishis of yore proclaimed to the world from house-tops :

मृत्यो : स मृत्युमाप्नोति स इह नानवे पश्यति।

One who sees maniness in the world moves from death to death. The Vedas declare :

यस्मिन् सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूत् विजानतः । तत्र को मोहः कः शोकः एकाचम् अनुपश्यतः ।

-यजुर्वेद । ४०-७।

The message of this Vedic Mantra is : What personal and individual attachment there can remain in one to whom ALL become ONE and ONE becomes ALL. Pesonal attachment, selfish interest and Ambition only cause sorrow and suffering but peace.

Inspite of the reverberating and exasperating calls for peace in the Assembly Halls of U.N.O. there can be no peace, since wars have their origin in the minds of men and not in battlefields. It were only the Vedic Rishis who carried the fight for peace in the minds of men when they repeated again and-'तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु'-Let my mind be full of purity of thought-and as they were the first of mankind who discovered this truth-the truth that the seed of war and peace lies embedded in the mind-let us pay homage to them at this hour of crisis for peace, and chant with the Vedic Rishis :

OM SHANTIH, SHANTIH, SHANTH.

समझकर करें । आर्य समाज को प्रजातन्त्र का एक अनोखा उदाहरण पेश करने की उन्होंने सभी से अपील की । पश्चात नवनिर्वाचित प्रधान श्री प्रो. विट्ठल राव आर्य जी ने कहा कि आर्य समाज संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती जी की २०० वीं जन्मशति चल रही है, इस सन्दर्भ में तेलंगाना प्रान्त के नलगोण्डा आर्य समाज के बृहद् प्रांगण में २०० वीं. जन्मशति मनाई जाएगी । राष्ट्रीय स्तर के नेताओं और विद्वानों को निमन्त्रित कर भारी समारोह का आयोजन किया जा रहा है । इस सम्मेलन में राष्ट्र रक्षा से सम्बधित कई एक मुद्दों पर तथा समाज निर्माण से सम्बधित मुद्दों पर चर्चा की जाएगी । यह समारोह फरवरी मास में होगा । तिथियों की तुरन्त घेषणा की जाएगी ।

महर्षि दयानन्द के जीवन में अनेक बार आए मृत्यु के क्षण

-खुशहालचन्द्र आय

महर्षि दयानन्द के जीवन में अनेक ऐसे क्षण आए जिनमें महर्षि जी को अपने जीवन की जोखिम उठानी पड़ सकती थी, परन्तु महर्षि जी ने अपने साहस, धैर्य, बल, कुशाग्र बुद्धि तथा ईश्वर पर अटूट विश्वास के कारण वे अपने जीवन को बचा सके। मैंने महर्षि जी के जीवन का जितना अध्ययन किया है जिनमें निम्न लिखित क्षण ऐसे आए हैं जिनमें उनका जीवन समाप्त हो सकता था, परन्तु महर्षि जी के भाग्य ने उनका साथ दिया जिससे वे अपने जीवन को बचा सके। मैंने महर्षि जी के जीवन का जितना अध्ययन किया जिनमें निम्न लिखित क्षण ऐसे आए हैं जिनमें उनका जीवन समाप्त ही सकता था, परन्तु महर्षि जी के भाग्य ने उनका साथ दिया जिससे वे अपने जीवन को बचा सके। वे कुछ क्षण या मौके इसी भान्ति हैं-

१. **बचपन की घटना**-महर्षि देवदयानन्द अपने माता-पिता की प्रथम सन्तान थे, इसलिए बड़े लाड़-चाव से पाले गए थे। इनको गहने, अंगूठी, मूल्यवान् कपड़ों से सजाकर रखते थे। इनको खिलाने-पिलाने, नहाने-धोने व खेलने के बचपन का नाम मूलशंकर को खिलाती-पिलाती, नहलाती-धुलाती, खेलाती थी। एक दिन मूलशंकर के काफी गहने व मूल्यवान् कपड़े पहना देखकर दायी के मन में लालच आ गया और वह सोचने लगी कि किसी नदी के किनारे इस बच्चे को ले जाकर इसके गहने, अंगूठी तथा मूल्यवान् कपड़े उतारकर मैं रख लूँगी और बच्चे को मारकर नदी में बहा दूँगी। ऐसा ही करने के लिए वह मूलशंकर को नदी के किनारे ले गई और उसके गहने, अंगूठी उतारने लगी तभी मूलशंकर दया भरी नजर से दायी को देखा तो दायी का मन पिघल गया और वह गहने न उतारकर उसको घर ले गई। यह घटना स्वामी दयानन्द की प्रथम मौत से बचने की घटना है। यह घटना स्वामी दयानन्द की प्रथम मौत से बचने की घटना है। यह घटना महर्षि की प्रत्येक जीवनी में नहीं लिखी है, लेकिन किसी-किसी जीवनी में लिखी है, सो जानना।

२. **दुर्गा के भक्तों द्वारा मारने का प्रयास**-तुंगनाथ पर्वत की लतहटी से चलकर महर्षि जी कुछ आगे बढ़े तो उनको कुछ झोपड़ियाँ जिसमें रात्रि विश्राम के लिए बस्ती में चले गए। बस्ती निवासियों ने महर्षि जी की बड़ी सेवा की और विनम्र प्रार्थना की कि आप कुछ दिन यहीं ठहर जाओ। महर्षि जी उनके प्रेम को देखकर वहीं कुछ दिन ठहरने का निश्चय किया। वह बस्ती दुर्गा भक्तों की थी। दुर्गा पर्व आ गया तो वे सब भक्त लोग महर्षि जी को दुर्गा मन्दिर में ले गए। मन्दिर के द्वार पर एक मजबूत देहधारी व्यक्ति हाथ में खाण्डा लिए देखा। महर्षि जी मूर्ति के समीप पहुँच गए। वहीं अधेड़ आयु का पुजारी खड़ा था। साथ आए दुर्गा के भक्तों ने कहा, "स्वामी जी ! एक बार आप दुर्गा के सम्मुख नतमस्तक होकर प्रणाम अवश्य कीजिए।" स्वामी जी ने दृढ़तापूर्वक कहा, "मैं मूर्तिपूजक नहीं हूँ।" इस पर पुजारी क्रोधित हो गया और उसने स्वामी जी की गर्दन को कसकर पकड़ा और मूर्ति के सामने झुकाना चाहा, पर वह उस वज्र देह की गर्द को हिला भी नहीं सका। स्वामी जी मुड़े तो एक खड्गधारी व्यक्ति उनकी गर्दन पर वारकरनाचाहता था, तो सिंह-सी स्फूर्ति से खड्ग उसके हाथ से छीनकर मन्दिर के प्रांगण में निकल आए। वहाँ कई दुर्गा भक्त हाथों में शस्त्र लेकर उन पर टूट पड़े। स्वामीजी ने तेजी से खड्ग घुमाते हुए मन्दिर की दीवार फांदकर अन्धेरे में विलीन हो गए। इस प्रकार स्वामी जी ने अपनी जान बचाई।

३. **रीच का सामना करने की घटना**-बदरीनारायण से रामपुर होते हुए स्वामी जी काशीपुर पहुँच गए। वहाँ से उत्तर भारत का भ्रमण करके नर्मदा के तट पर पहुँचने के बाद उसके आदिस्त्रोत की ओर इस आशा से चल पड़े कि सम्भव है कही किसी विलक्षण सन्त के दर्शन हो सकें। रास्ता विकट था, कुछ दूरी तक पगडण्डियों के निशान मिले। धीरे-धीरे वे भी विलुप्त हो गए। बस्ती होने का कहीं कोई संकेत नहीं दिखाता था। किधर जाना चाहिए, स्वामी जी सोच ही रहे थे कि सामने से एक विशालकाय काला रीछ दौड़ता हुआ आता दिखाई दिया। वह कुछ दूरी पर ठहर कर पिछले पैरों पर खड़ा हो गया और जोर से चिंघाड़ा। वह उन पर वार करना चाहता था कि स्वामी जी स्फूर्ति से अपने डण्डा जैसे ही उसकी तरफ बढ़ाया, वह उनके सामने ठहर न सका। परन्तु जाते समय रीछ इतनी जोर से चीखा कि उसकी आवाज सुनकर पहाड़ी लोग अपने कुत्तों सहित वहाँ उपस्थित हो गए और स्वामी जी से बस्ती में आने की प्रार्थना की। परन्तु स्वामी जी ने उन्हें विनम्रता पूर्वक लौटा दिया और अपनी राह पर बढ़ चले।

४. **राव कर्णसिंह से सामना**-स्वामी जी विभिन्न स्थानों में धर्म चर्चा और पाखण्डों का खण्डन करते हुए सम्वत् १९२५ (सन् १८६८ ई.) के ज्येष्ठ मास में कर्णवास पहुँच गए। उस समय कर्णवास में गंगा के मेले की धूम थी। उस अवसर पर करौली के रईस राव कर्णसिंह जी अपने दल-बल सहित गंगा स्नान के लिए आए हुए थे। उन्होंने एक ओर गंगा के किनारे मंडप बनवाकर रासलीला का आयोजन किया। मेले में पधारे सभी साधु-सन्तों और पण्डितों को उसमें आमन्त्रित किया। उसका आमन्त्रण महर्षि जी को भी मिला, परन्तु महर्षि जी उसमें सम्मिलित नहीं हुए और रासलीला का खण्डन करते रहे।

अगले दिन राव कर्णसिंह अपने समर्थकों सहित महर्षि जी की कुटिया पर आ पहुँचे और क्रुद्ध होकर बोले, "सभी साधु-सन्त हमारी रासलीला में पधारे ! आप क्यों नहीं आए ?" महर्षि उसकी भाव-भंगिमाओं से उसका उद्देश्य समझ गए थे। उन्होंने उत्तर दिया, "हम ऐसे निन्दनीय कृत्यों में सम्मिलित नहीं होते हैं।" क्रोध से उसके नेत्र लाल हो

गए। वह गरजकर बोला, ''आप रासलीला को निन्दनीय कृत्य कहते हैं, आप गंगा और अवतारों की निन्दा भी करते हो। मैं इनकी निन्दा करने वालों के साथ अच्छा वर्ताव नहीं करता हूँ। आपको सम्भलकर बोलना चाहिए और उसका हाथ तलवार की मूठ पर चला गया।'' महाराज के उपदेश सुन रहे सज्जनों के चेहरे पर अनिष्ट घट जाने के भाव अंकित होने लगे। परन्तु महर्षि जी सहज भाव से बोले, ''हम किसी की निन्दा नहीं करते हैं, जिसे जैसा देखते हैं वैसा हीकहते हैं। हमारे सामने कोई हमारे महापुरुषों का स्वांग भरे और हम उसे देखते रहें, यह कार्य अति निन्दनीय है। अति निर्बल व्यक्ति भी अपने पूर्वजों के स्वांग का सहन नहीं कर सकता। आप अपने महापुरुषों का ऐसे व्यक्तियों द्वारा स्वांग भराते हो जो आचरण पतित हैं। ऐसे कार्य करते हुए लज्जा आनी चाहिए।''

महर्षि जी की यह वार्ता सुनकर राव कर्णसिंह आपे से बाहर हो गए। वे अपनी तलवार लेकर उठ खड़े हुए। उनके साथ उनके समर्थक भी खड़े हो गए। शस्त्र भी उनके पास थे। ऐसा देखकर श्रद्धालु जन घबरा गए, परन्तु स्वामी जी ने मुस्कुराते हुए कहा, ''कर्णसिंह साधुओं से सास्त्रार्थ किया जाता है, यदि आपको शास्त्रार्थ करना ही है तो फिर महाराजा जयपुर या जोधपुरसे जाकर भिड़ना चाहिए और यदि शास्त्रार्थ करना चाहते हो तो वृन्दावन से अपने गुरु रंगाचार्य को ले आइए।''

गुरु का नाम सुनते ही राव कर्णसिंह की आँखों में खून उतर आया। उसने तलवार को म्यान से बाहर निकाल लिया और महर्षि जी को अपशब्दों से सम्बोधित किया। यह दृश्य देखकर स्रोताओं की सांसें रुक गईं। राव कर्णसिंह क्रोध में अन्धा हो गया था। उसने तलवार वाला हाथ ऊँचा किया और महर्षि जी की ओर बढ़ा। महर्षि जी सम्भलकर बैठे हुए थे। उन्होंने स्फूर्ति के साथ उसका खड्ग वाला हाथ की कलाई से पकड़ लिया और इतने बल से दबाया कि उसके हाथ से तलवार छूट गई। उसे पसीना आगया, चेहर पर हवाइयाँ उड़ने लगी। महर्षि जी ने बाएं हाथ से तलवार की मूठ पकड़ उसकी नोंक को धरती पर टेककर इतने जोर से दबाया कि तलवार के दो टुकड़े हो गए। महर्षि जी ने कहा, ''हम संन्यसी हैं। जाओ परमात्मा तुम्हारा हित करे और तुम्हे सद्बुद्धि प्रदान करे।''

५. **स्वार्थी जनों द्वारा स्वामी जी की प्राणहानि का प्रयास**-भारतवर्ष में उस समय महर्षि देवदयानन्द ही ऐसे अकेले साधु थे जो धर्मान्धता, छुआ-छूत, अन्धविश्वास, पाखण्ड, जातिगत भेदभाव और शिक्षा के विरुद्ध जूझ रहे थे। प्रबुद्ध लोग उनके अनुयायी बन सद्धर्म के प्रचार में सहयोगी हो गए थे। परन्तु पाखण्डी और ढोंगी लोग उनके प्राण लेने में उतर गए थे।

शहबाजपुर (उ.प्र.) में रहते हुए ठाकुर गंगासिंह उनके भक्त बन गए थे। नित्य उनके प्रवचन सुनने जाते। एक दिन दो वैरागी बाबा, ठाकुर गंगासिंह जी के पास आए और उनसे कुछ समय के लिए अपनी तलवार दे देने के लिए कहा। उन्होंने तलवार लेने का कारण पूछा तो वे आवेश में बोले, ''गप्पाष्टिक दयानन्द के जीवन का हम अन्त कर देना चाहते है। वहदेवी-देवताओं का अपमान करता है। भागवत का खण्डन करता है। अब वह हमारे हाथों से बचकर कहीं नहीं जा सकता।''

ठाकुर गंगासिंह नेकहा, ''वे तो उत्तम साधु हैं। उनका संग करने के बाद ही आप उनको समझ सकोगे। याद रखना इस विचार को लेकर पुनः मेरे पास आने का साहस न करना। अन्यथा इसका परिणाम अच्छा नहीं होगा।'' ऐसा सुनकर वे चले गए। इसके उपरान्त ठाकुर साहब महर्षि जी की सेवा में पधारे और उन्हें वैरागियों की पूरी घटना कह सुनाई। महर्षि जी मुस्कुराए और बेले, ''मेरा वध करने का सामर्थ्य उनमें नहीं है। आप निश्चिन्त होकर विश्राम करिए।'' इस पर भी गंगासिंह ठाकुर पूरी रात महर्षि जी की सेवा में प्रहरी की तरह जागते रहे।

६. **वैष्णव-मतावलम्बी द्वारा महर्षि जी की प्राणहरण की चेष्टा**-आश्विन सुदी १२ संवत् १९३१ (सन् १९७४ ई.) को महर्षि जी ने मुम्बई निवासियों के आग्रह पर उस नगर में प्रवेश किया। नगर वासियों ने रेलवे स्टेशन पर उनका भव्य स्वागत किया और गोसाइयों के अखाड़े में बालुकेश्वर पर उनको ठहरा दिया। श्रोताओं की संख्या अधिक होने के कारण कोट मैदीन में एक विशाल मण्डप का प्रबन्ध किया गया। महर्षि जी जहाँ भी जाते वहीं विरोधियों की भी कमी नहीं होती। उस समय मुम्बई में वैष्णव मत का अच्छा प्रभाव था। उनका प्रचार था कि तन, मन, धन सब गुरु के अर्पण। महर्षि जी ने इसका घोर विरोध किया। जब सर्वस्व ही गुरु को समर्पित कर दिया तो परिवार व समाज के लिए क्या शेष रह गया ? इस समर्पण की आड़ में आवंछित घटनाएँ घट जाने की सम्भावना बनी रहती है। यह सुनकर वैष्णव मतावलम्बी जीवन गोंसाई महर्षि जी पर अति क्रोधित हुआ। इस बात की जानकारी महर्षि जी को हो गई थी। उसने अपने षड्यन्त्र का माध्यम महर्षि जी का सेवक बलदेवसिंह को बनाया। बलदेव लोभ में फँस गया। एक हजार रुपयों की राशि के मोह ने उसे अन्धा बना दिया। जीवन गोसाई खुश था। वह समझता था कि बलदेव महर्षि जी का विश्वास पात्र सेवक है। भोजन में विषादि देने उसे कोई असुविधा नहीं होगी। उसने बलदेवसिंह को महर्षि जी का देहावसान हो जाने पर एक हजार रुपए देने के लिए लिखित आश्वासन दे दिया और पांच रुपए और एक सेर मिठाई अग्रिम उसे दे दी थी।

जब बलदेवसिंह महर्षि जी के सामने आया तब उसके चेहरे के भाव महर्षि जी को बदले-बदले लगे। उनके मन में सन्देह उत्पन्न होगया। उन्होंने उससे पूछ लिया, ''गोसाइयों के यहाँगया था ?'' बलदेवसिंह का शरीर कांपने लगा। उसने गर्दन हिलाकर हाँ भी भरी। महर्षि जी मुस्कुराए और बोले, ''तो दयानन्द के सांसों का हरण करने के लिए कितने में सौदा तय हुआ ?'' बलदेव सिंह महर्षि जी के चरणों में गिर पड़ा और उसने पूर्व घटी घटना कह सुनाई। उसने क्षमा कर देने के लिए महर्षि से प्रार्थना की और भविष्य में गोसाइयों के यहां न जाने की प्रतिज्ञा की।

महर्षि जी ने उसे क्षमा तोकर दिया, परन्तु उसको अपने पास नहीं रखा। जीवन

कल्याण मार्ग के पथिक वीर विप्र योद्धा ऋषिभक्त स्वामी श्रद्धानन्द

-प्रो. वा. विष्णुदयाल

स्वामी श्रद्धानन्द ऋषि दयानन्द के शिष्यों में एक प्रमुख शिष्य हैं जिनका जीवन एवं कार्य सभी आर्य जनों में देशवासियों के लिए अभिनन्दनीय एवं अनुकरणीय हैं। स्वामी श्रद्धानन्द जी का निजी जीवन ऋषि दयानन्द एवं आर्य समाज के सम्पर्क में आने से पूर्व अनेक प्रकार के दुर्व्यसनों से ग्रस्त था। इन दुव्यर्सनों के त्याग में ऋषि दयानन्द के साक्षात् दर्शनों से प्राप्त प्रेरणा एवं आर्य समाज के सत्यार्थ प्रकाश आदि ग्रन्थों के अध्ययन का बहुत महत्वपूर्ण स्थान रहा। स्वामी श्रद्धानन्द ने अपनी आत्म कथा 'कल्याण मार्ग का पथिक' नाम से लिखी है। इस कथा में स्वामी श्रद्धानन्दजी ने अपने जीवन के सभी पक्षों का प्रकाश किया है। उनकी आत्मकथा शायद पहली आत्म कथा है जिसमें एक महापुरुष ने अपने चारित्रिक पतन की घटनाओं का भी विस्तृत एवं समालोचनात्मक वर्णन करते हुए अपने हृदय के सभी भावों को अपने पाठकों के सम्मुख खोलकर रखा है। ऐसा साहस नगण्य लोग ही कर सकते हैं। स्वामी जी की आत्मकथा एवं उनके किए कार्यों पर दृष्टि डालने से उनके प्रति श्रद्धा एवं प्रेम उमड़ता है। आज के युग में हम किसी व्यक्ति से ऐसी अपेक्षा नहीं कर सकते कि वह अपने जीवन की अनेकानेक बुराईयों को दूर कर स्वामी श्रद्धानन्द जी जैसा जीवन व्यतीत कर सकता है। इस लेख में हम उनके प्रमुख कार्यों व घटनाओं को स्मरण कर रहे हैं।

स्वामी श्रद्धानन्द जी का वचपन का नाम बृहस्पति था। आपका जन्म गुरुवार (फाल्गुन कृष्ण त्रयोदशी १९१३ विक्रमी) ३ अप्रैल, सन् १८५६ को ग्राम तलवन जिला जालन्धर (पन्जाब) में लाला नानकचन्द जी क्षत्रिय के घर में हुआ था। पिता पुलिस विभाग में सेवारत रहे। जन्म के कुछ समय बाद पिता से आपको मुन्शीराम नाम प्राप्त हुआ था जो संन्यास से पूर्व तक रहा। जन्म के तीन वर्ष बाद बरेली नगर में आपकी शिा आरम्भ हुई थी। १० वर्ष की अवस्था होने पर सन् १८६६ में काशी में आपका उपनयन संस्कार हुआ था। इन दिनों आपके पिता इसी स्थान पर सेवारत व पदासीन थे। १७ वर्ष की अवस्था में आप क्वीन्स कॉलेज, बनारस में अध्ययन हेतु प्रविष्ट हुए थे। श्री मोतीलाल नेहरू इस कॉलेज में आपके सहपाठी थे। २१ वर्ष की आयु में मुन्शीराम जी का विवाह हुआ। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती शिवदेवी जी धार्मिक संस्कारों से ओतप्रोत थी। अपने पति धर्म का इतनी उत्तमता से निर्वाह किया जिसे स्वामी श्रद्धानन्द जी की आत्मकथा पढ़कर ही जाना जा सकता है। माता शिवदेवी जी के पिता सोन्धी परिवार के लाला शालिग्राम थे। सन् १८७९ में मुन्शीराम जी के जीवन में अनेक घटनाएं घटी जिन्होंने पौराणिक रीति से पूजा फाट करने वाले मुन्शीराम जी को नास्तिक विचारों का युवक बना दिया था। जिन दिनों आप अपने पिता के साथ बरेली में रह रहे थे, सौभाग्य से तब वहां वेदों के अपूर्व विद्वान तथा वेदों के प्रचारक ऋषि दयानन्द का उपदेशार्थ पधारना हुआ।

स्वामी दयानन्द के बरेली में आयोजित उपदेशों में सुरक्षा की दृष्टि से मुन्शीराम जी के पिता नानकचन्द जी को ड्यूटी पर नियुक्त किया गया था। ऋषि दयानन्द के उपदेश सुनने उन दिनों बरेली के बड़े-बड़े अंग्रेज अधिकारी भी आया करते थे। उपदेशों में सत्य धर्म की मान्यताओं का उल्लेख व उनका मण्डन तता असत्य व तर्कहीन बातों का खण्डन किया जाता था। ऋषि दयानन्द ईश्व में विश्वास रखने वाले उच्चकोटि के महापुरुष व महात्मा ते। अतः मुन्शीराम जी के पिता ने मुन्शीराम जी को ऋषि दयानन्द के व्याख्यान सुनने के लिए वहां जाने की प्रेरणा की।पिता भक्त मुन्शीराम जी अपने पिता की प्रसन्नता के लिए ऋषि दयानन्द के प्रवचनों में गये थे। उन्होंने न केवल उनके उपदेश ही सुने थे अपितु उनसे शंका समाधान भी किया था। इसे हम नास्तिक-आस्तिक संवाद भी कह सकते हैं। ऋषि दयानन्द ने मुन्शीराम जी के सभी प्रश्नों व शंकाओं का समाधान कर दिया था। इससे मुन्शीराम जी के मन व आत्मा में सच्ची आस्तिकता का बीज पुनः अंकुरित हो गया। समय आने पर वह विचार फला व फूला और उसने मुन्शीराम जी को भी एक आदर्श ईश्वर-भक्त तथा देश व समाज का सुधारक ही नहीं बनाया अपितु देश का निर्माता एवं वैदिक धर्म का आदर्श प्रचारक व सेवक बनने का गौरवपूर्ण अवसर भी प्रदान किया। इससे मुन्शीराम जी एक आदर्श देशभक्त, समाज सुधारक तथा वैदिक धर्मके उद्धारक व प्रचारक बने। स्वामी श्रद्धानन्द जी ने अपनी आत्मकथा 'कल्याण मार्ग का पथिक' नाम से लिखी है। इस पुस्तक को सभी पाठकों को पढ़ना चाहिए। इससे उन्हें भी कल्याण के मार्ग पर चलने की प्रेरणा प्राप्त होगी।

मुन्शीराम जी संन्यास धारण करने से पूर्व अपने जीवन में महात्मना मुन्शीराम जी के नाम से प्रसिद्ध हुए। आप सत्यार्थ प्रकाश पढ़कर व उससे प्रभावित होकर सन् १८७५ में आर्य समाज की स्थापना के ९ वर्ष वाद सन् १८८४ में आर्य समाज, जालन्धर के सदस्य बने थे। अपनी विद्वता, सामाजिक कार्यों एवं संगठन विषयक योग्यता सहित वैदिक धर्म के प्रति समर्पण के कारण आर्य समाज का सदस्य वनने के दो वर्ष वाद सन् १८८६ में ही आप आर्य समाज जालन्धर के प्रधान चुने गए। आपकी शिक्षा मुख्तारी की परीक्षा पास करने तक हुई थी। आपने सन् १८८८ में जालन्धर में वकालत करनी आरम्भ की थी। आप वही मुकदमें लिया करते थे जो सत्य हुआ करते थे। किसी मुकदमें का झूटा होना यदि आपको पता चलता तो उसे आप छोड़ देते थे। अपने ज्ञान एवं पुरुषार्थ से शीघ्र ही आप एक सफल वकील सिद्ध हुए थे। आपने अपनी आय से जालन्धर में एक वड़ी कोठी वनवाई थी जिसे वाद में आपने अपनी अन्तिम

सम्पत्ति के रूप में वेद प्रचारार्थ गुरुकुल कांगड़ी को दान कर दी थी। सन् १८८९ की बैसाखी के दिन आपने जालन्धर से 'सद्धर्म प्रचारक' नामक एक उर्दू पत्र का प्रकाशन आरम्भ किया था। यह पत्र भी अत्यन्त लोकप्रिय हुआ। बाद में हिन्दी की महत्ता के कारण आपने भारी घाटा उठाकर इसका प्रकाशन हिन्दी भाषा में कर दिया। इस पत्र में प्रकाशित महात्मा मुन्शीराम जी के लेख व सम्पादकीय पन्जाब के पाठकों द्वारा बहुत रुचि से पढ़े जाते थे।

सन् १८९० में महात्मा मुन्शीराम जी ने लाला देवराज जी के साथ मिलकर जालन्धर में एक 'आर्य कन्या महाविद्यालय' स्कूल व कॉलेज की स्थापना की थी। यह वह समय था जब माता-पिता अपनी कन्यायों को स्कूल भेजकर पढ़ाते नहीं थे। ऐसे समय में कन्यायों का विद्यालय खोलना एक क्रान्तिकारी कार्य था। वर्तमान में यह जालन्धर का कन्याओं का सबसे बडा महाविद्यालय है। अथर्ववेद, सामवेद भाष्यकार तथा अनेक वैदिक ग्रन्थों के लेखक पं. विश्वनाथ विद्यालंकार वेदोपाध्याय जी की धर्मपत्नी माता कुन्ती देवी इसी महाविद्यालय की छात्रा थी। हमारा सौभाग्य है कि हमें पन्डित विश्वनाथ विद्यालंकार जी सहित माता कुन्ती देवी जी के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त रहा है। अपने इस कार्य के कारण भी महात्मा मुन्शीराम जी, जो बाद में स्वामी श्रद्धानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुए, अमर हैं। सन् १८९१ में महात्मा जी की धर्मपत्नी माता शिवदेवी जी का निधन हुआ। इस समय महात्मा हीका वय मात्र ३५ वर्ष का था। इससे आप पर अपने दो पुत्रों तथा तीन पुत्रियों के पालन पोषण का भार भी आ गया था। सभी सामाजिक कर्तव्यों को करते हुए आपने इस दायित्व को भी बहुत कुशलता से निभाया और अपने बच्चों को माता-पिता दोनों का ही प्यार व स्नेह दिया।

महात्मा मुन्शीराम जी सन् १८९२ में आर्य प्रतिनिधि सभा, पन्जाब के प्रधान निर्वाचित हुए। महर्षि दयानन्द के सत्यार्थ प्रकाश में वर्णित प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति के प्रतिनिधि गुरुकुलों की परम्परा को पुनर्जीवित करने के लिए आपने ऋषि दयानन्द के स्वप्नों के अनुरूप गुरुकुल की स्थापना के लिए सन् १८९२ में तीस हजार रुपए एकत्र करने का संकल्प लेकर गृहत्याग कर दिया था। कुछ ही समय में आपका संकल्प पूरा हो गया और संकल्प से अधिक धनराशि प्राप्ती हुई थी। उन दिनों तीस हज़ार रुपए बहुत बड़ी धनराशि हुआ करती थी। इसी धनराशि के एकत्र होने के पश्चात् हरिद्वार के निकट कांगड़ी ग्राम की भूमि को दान में प्राप्त किया गया था जहां सन् १९०२ में आपको स्नों का प्रसिद्ध गुरुकुल कांगड़ी स्थापित हुआ। आपके समर्पण व योग्यता से यह गुरुकुल दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति को प्राप्त हुआ। इसकी प्रसिद्धि को सुनकर इंगलैण्ड से श्री रैमजे मैकडानल जो बाद में इंगलैण्ड के प्रधानमन्त्री बने, गुरुकुल पधारे थे और यहां स्वामी श्रद्धानन्द जी के साथ रहे थे। उन्होंने स्वामी श्रद्धानन्द जी की प्रशंसा की थी और उन्हें ईसाई मत के संस्थापक ईसामसीहके समान 'जीवित ईसामसीह' बताया था। कुछ समय बाद इस गुरुकुल में भारत के वायसराय श्री जेम्स फोर्ड भी आए थे। गुरुकुल की सफलता को बताने वाले अनेक उदाहरण है परन्तु स्थानाभाव के कारण उनका उल्लेख नहीं कर रहे हैं। इतना अवश्य लिख देते हैं कि इस गुरुकुल से देश को वेदों के बहुत बड़े आचार्य व विद्वान्, क्रान्तिकारी, देशभक्त, समाचार पत्रों के सम्पादक, इतिहासकार, आज़ादी के आन्दोलनकारी आदि मिले हैं। पाठकों से अनुरोध हैं कि वह डॉ. विनोदचन्द्र विद्यालंकार लिखित 'एक विलक्षण व्यक्तित्व : स्वामी श्रद्धानन्द' पं. सत्यदेव विद्यालंकार लिखित 'स्वामी श्रद्धानन्द' तथा ११ खण्डों में प्रकाशित 'स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली' का अध्ययन करें। इस से वह स्वामी श्रद्धानन्द जी के व्यक्तित्व तथा कार्यों को विस्तृ रूप से जान सकेंगे।

महात्मा मुन्शीराम जी ने सन् १९१७ में मायापुर, हरिद्वार में सन्न्यास लिया था और नया नाम स्वामी श्रद्धानन्द धारण किया था। स्वामी जी ने शिक्षा जगत् सहित देश की आजादी, दलितोद्धार, शुद्धि, सामाजिक आन्दोलनों व समाज सुधार के महनीय कार्यों को किया। इनका संक्षिप्त परिचय हम इस लेख में दे रहे हैं। सन् १९०१ में स्वामी जी ने अपनी पुत्री अमृत कला का जाति-बन्धन तोड़कर डॉ. सुखदेव जी से विवाह कराया था। सन् १९०७ में आर्य समाज की शिरोमणी सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली के प्रथम प्रधान बने थे। सन् १९०९ में स्वामी जी ने गुरुकुल कुरुक्षेत्र की स्थापना की थी। आज भी यह गुरुकुल फल फूल रहा है। स्वामी जी को सन् १९१३ में भागलपुर (बिहार) में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अध्यक्ष बनाया गया था। आज़ादी के इतिहास में दिल्ली में एक अद्भुत घटना घटी थी। सन् १९१९ में ३० मार्च ोक चान्दनी चौक में एक आन्दोलन के नेतृत्व के समय अंग्रेजों की गोरी सेना की संगीनों के सामने स्वामी श्रद्धानन्द ने अपना सीना तानकर सिंह-गर्जना की थी। वह अंग्रेज सैनिकों को बोले थे 'हिम्मत है तो चलाओ गोली'। इस सिंह-गर्जना को सुनकर गोरे सैनिकों की संगीने नीचे झुक गई थी। आज़ादी के इतिहास की यह एक दुर्लभ अद्वितीय घटना है। इस घटना से दिल्ली में सभी भारतवासी प्रसन्न, आह्लादित व रोमान्चित हुए थे। स्वामी जी की वीरता के लिए उन्हें सम्मानित करने के लिए ४ अप्रैल, १९१९ को उन्हें दिल्ली की जामा मस्जिद में आमन्त्रित कर उसके मिम्बर से उनका सम्बोधन कराया गया था। यहां स्वामी जी ने वेदमन्त्र बोल कर हिन्दू व मुसलमानों को देशभक्ति व परस्पर प्रेम का सन्देश दिया था। इसके बाद किसी हिन्दू विद्वान व नेता को यह जामा मस्जिद के मिम्बर से लोगों को सम्भोधन करने का सौभाग्य नहीं मिला।

सन् १९१९ में वैसाखी के दिन अमृतसर के जिलयांवाला बाग में एक शान्तिपूर्ण सभा में उपस्थित सभी देशभक्त लोगों पर अंग्रेजों ने गोलियां चलाकर उन्हें मार डालने का प्रयत्न किया। बड़ी संख्या में स्त्री, पुरुष व बच्चे इसमें मारे गए थे। इसके विरोध

...पृ. २२ का शेष

में २६ दिसम्बर, १९१९ को अमृतसर में कांग्रेस का ऐतिहासिक अधिवेशन हुआ था। इस अधिवेशन का स्वागताध्यक्ष स्वामी श्रद्धानन्द जी को बनाया गया था। इसकी विशेषता यह रही कि स्वामी श्रद्धानन्द जी ने कांग्रेस के मन्च से प्रथम वार हिन्दी में अपना स्वागत भाषण पढ़ा। इसमें उन्होंने दलितोद्धार की भी चर्चा की थी। इसका विस्तृत विवरण स्वामी श्रद्धानन्द जी विषयक ग्रन्थों में पढ़ने को मिलता है जिसे सभी बन्धुओं को पढ़ना चाहिए। स्वामी जी ने १९२० में बर्मा की यात्रा की थी। उन्होंने नागपुर कांग्रेस में दलितोद्धार की योजना वा कार्यक्रम भी प्रस्तुत किया था। दलितोद्धार के कार्यों से प्रभावित दलितों के सबसे बड़े नेता डॉ. भीमराव अम्बेडकर जी ने लिखा है कि स्वामी श्रद्धानन्द दलितों के सबसे बड़े हितैषी थे। दलितों के प्रति उनकी की गई सेवा का मूल्यांकन कौन कर सकता है ?

स्वामी जी समाजहित के सभी कार्यों में अग्रणीय भूमिका निभाते थे। सिक्खों के सन् १९२२ के आन्दोलन 'गुरु का बाग मोर्चा' के अवसर पर स्वामी श्रद्धानन्द जी 'अकाल तख्त, अमृतसर' में भाषण देकर जेल गए थे। उनको पशुओं को रखे जाने वाले पिन्जड़े में रखकर यातनाएं द गई थी। स्वामी जी ने सन् १९२३ में आगरा में 'शुद्धि सभा' की स्थापना की थी। इसके अन्तर्गत बड़े पैमाने पर धर्मान्तरित हिन्दु बन्धुओं की शुद्धि की गई थी। स्वामी जी दलितोद्धार के मुद्दे पर कांग्रेस से अल हुए थे। राजनीति में हिन्दू हितों की पूर्णतया उपेक्षा की जाती थी। इस कारण स्वामी श्रद्धानन्द जी ने सन् १९२३ में हिन्दू महासभा में प्रवेश किया था। उन्होंने हिन्दू संगटन नाम से एक लघु ग्रन्थ भी लिखा है जो सभी हिन्दुओं के पढ़ने योग्य है। आश्चर्य है कि आज भी हिन्दू नेता, संगठन तथा विशाल हिन्दू समाज अपने हितों की स्वयं ही उपेक्षा कर रहे हैं तथा अपने भविष्य की चिन्ता नहीं करते। यदि वह स्वामी श्रद्धानन्द जी की हिन्दू-संगठन पुस्तक को पढ़ लें तो आज भी हम हिन्दू समाज की रक्षा कर सकते हैं और इसको नष्ट करने के जो षडयन्त्र हो रहे हैं, उस पर विजय प्राप्त कर सकते हैं। इसके लिए हिन्दुओं के जागने व उन्हें जगाने की आवश्यकता है।

स्वामी श्रद्धानन्द जी ने सन् १९२४ में गाँधी जी के निमन्त्रण पर बेलगाम-कांग्रेस में दर्शक रूप में भाग लिया था। स्वामी जी ने सन् १९२४ में वायकम (केरल) में जाति-पान्ति तथा ऊंच-नीच की सामाजिक प्रथाओं के विरुद्ध सत्याग्रह का नेतृत्व भी किया था। स्वामी जी ने कर्नाटक, आन्ध्र तथा चेन्नई प्रान्तों व नगरों की भी ऐतिहासिक यात्राएं की थीं। सन् १९२५ में मथुरा में ऋषि दयानन्द जी की जन्म शताब्दी के अवसर पर एक विशाल समारोह का आयोजन किया गया था। इसका नेतृत्व भी स्वामी जी ने ही किया। सन् १९२५ में स्वामी जी दक्षिण बारत में वेद प्रचारार्थ गए थे। स्वामी जी के एक शिष्य व उच्चकोटि के वैदिक विद्वान पं. धर्मदेव विद्यामार्तण्ड जी ने जीवन भर दक्षिण भारत में रहकर वेद प्रचार का कार्य किया।

स्वामी जी के दलितोद्धार व शुद्धि के कार्यों से विधर्मी उनके शत्रु बन गए थे। २३ दिसम्बर, १९२६ को एक षडयन्त्र करके एक क्रूर हत्यारे अब्दुल रशीद द्वारा रुग्णावस्था में छल से स्वामी जी पर गोलियों का प्रहार किया गया जिससे वह वीरगति को प्राप्त हुए। ऋषि दयानन्द और पं. लेखराम जी के बाद धर्म के लिए बलिदान होने वाले वह तीसरे प्रमुख विप्र योद्धा थे। हम स्वामी श्रद्धानन्द जी के गौरवपूर्ण जीवन व कार्यों को सम्रण कर उनको श्रद्धाँजलि देते हैं और आर्य बन्धुओं से निवेदन करते हैं कि वह स्वामी श्रद्धानन्द जी के विस्तृत जीवन चरित्र का अवश्य अध्ययन करें जिससे वैदिक धर्म एवं संस्कृति की रक्षा के साथ हिन्दू समाज से अन्धविश्वासों व कुरीतियों को दूर किया जा सके। ओ३म् शम्।

वैदिक धर्म में एक निराकार, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, न्यायकारी ईश्वर को ही पूज्य (उपास्य) माना जाता है, उसके स्थान में अन्य देवी-देवताओं को नहीं।

गोसाई अपने इस षड्यन्त्र में सफल नहीं हुआ, तो उसने दूसरी चाल चली उसने भाड़े पर चार गुण्डे महर्षि दयानन्द की हत्या कर देने के लिए तैयार किए। महर्षि जी नित्य नियम से समुद्र तट पर भ्रमण के लिए जाया करते थे। वे गुण्डे महर्षि जी का पीछा करने लगे। महर्षि जी को समझते देर नहीं लगी। एक दिन महर्षि जी उसके सामने खड़े हो गए और गम्भीर वाणी में कहा, "तुम मेरी हत्या करना चाहते हो ?" महर्षि जी के बोलते ही उनके पैरों तले ज़मीन खिसक गई। वे कुछ देर तक भी उनके सम्मुख खड़े नहीं हो सके। जीवन गोसाई इतना भयभीत हुआ कि उसने मुम्बई छोड़ दी। वह मद्रास भाग गया।

वैसे तो स्वामी जी को सत्रह बार विष दिया गया, परन्तु इन्होंने न्यौली क्रिया द्वारा विष को बाहर निकाल दिया। जिसमें एक घटना अधिक प्रचलित हैं कि एक धर्मान्या ब्राह्मण ने स्वामी जी को पान में विष दे दिया। एक सैयद मोहम्मद नामक तहसीलदार जो स्वामी जी का अनन्य भक्त था उसको मालूम पड़ने पर उस ब्राह्मण को जेल मेंडाल दिया और स्वामी जी को यह सारी बात बताई। स्वामीजी ने कहा कि हम तो लोगों को बन्धनों से मुक्ति दिलाने आए हैं, बन्धन कराने नहीं। तब तहसीलदार ने उस दोषी को छोड़ दिया। काशी के प्रसिद्ध शास्त्रार्थ के समय भी पण्डित लोगों ने गुण्डे बदमाशों को अपने साथ लेजाने के लिए बुला रखा था जिससे वे अपनी हार को छिपाने के लिए उनसे स्वामी जी के ऊपर ईंट, पत्थर फिंकवाकर हल्ला-गुल्ला करवा सके।वैसा ही किया भी परन्तु रघुनाथ सहाय जो स्वामी जी का परम भक्त था, उसने स्वामी जी की जान बचा ली। एक बार स्वामी जी अलकनन्दा बर्फीली नदी में उस पार जाने के लिए नदी में उतर गए और कॉफी कष्ट सहा। इसी प्रकार स्वामी जी नर्मदा नदी के तट पर जाते हुए उनको भीषण व भयंकर जंगलों की खाक छाननी पड़ी और जंगली भयंकर जानवरों से अपनी जान बचाई। परन्तु इस लेख मेंकेवल छह बड़ी घटनाओं का विवरण किया हैं।

आशा है सुधीपाठक गण इस लेख को पढ़कर अपने ज्ञान की वृद्धि करेंगे जिससे मेरा परिश्रम भी सार्थक होगा।

स्वर्गीय श्री श्रीनिवास जी आर्य

- श्री अशोक कुमार श्रीवास्तव

श्रीनिवास जी का पूरा नाम श्रीनिवास राव था। आर्य समाज के प्रभाव से इन्होंने अपना नाम श्रीनिवास आर्य रख लिया।

इनका पैतृक गाँव कर्नाटक राज्य, बीदर जिला में हुमनाबाद कस्बा है। इनका जन्म दि. ७-७-१९४६ ई. को इनके ननिहाल ज़हीराबाद (तेलंगाना) में हुआ। इनके पिता का नाम लिंगोजी राव और माता का नाम रत्नाबाई था। श्रीनिवास आर्य जी अपने माता पिता के ज्येष्ठ पुत्र थे। श्रीनिवास की शिक्षा हाई स्कूल तक बीदर, कर्नाटक में हुई। इन्होंने हाई स्कूल के बाद मेकानिकल डिप्लोमा किया था।

श्रीनिवास जी के पिताजी पुलिस विभाग में कार्यरत थे। सेवा-निवृत्ति के पश्चात् इनके पिताजी अपने पैतृक गाँव हुमनाबाद में ही निवास करने लगे। आर्य समाज हुमनाबाद के मन्त्री पद पर रहकर इनके पिताजी ने बहुत कार्य किया। स्वतन्त्रता आन्दोलन में भी सक्रिय रूप से भाग लेकर स्वतन्त्रता सेनानी बने। इस सभी गतिविधियों का श्रीनिवास जी पर कारगर प्रभाव पड़ा। आर्य समाज में श्रीनिवास जी की रुचि बढ़ने लगी और इस तरह से वे भी आर्य समाज के गतिविधियों में सक्रिय रूप से जुड़ गए।

श्रीनिवास जी का विवाह सन् १९७२ में हुआ। इनके चार सुपुत्र और एक सुपुत्री है। परिवार में आर्थिक तंगी के चलते श्रीनिवास जी सन् १९८८ में हैदराबाद आकर आर्य प्रतिनिधि सभा से जुड़े। तब से उनकी मृत्यु पर्यन्त लगभग ३६ वर्ष तक मुख्य कार्यालय सचिव के रूप में अपनी सेवाएं देते रहे। दि. १८-१२-२०२३ को सायंकाल ५-३० बजे इनका आकस्मिक निधन हो गया। इस दिन भी श्रीनिवास आर्य जी लगभग सवा पांच बजे सायंकाल तक आर्य प्रतिनिधि सभा के कार्यालय में कार्य करते रहे।

श्रीनिवास जी बहुत ही साधु स्वभाव के थे। सबसे मधुर व्यवहार था। सादा जीवन और उच्च विचार इनका आदर्श था। श्री श्रीनिवास जी अपने कपड़े स्वयं सिलते थे और अपने हाथ से अपने कपड़े धोकर पहनते थे। हैदराबाद में होने वाले सम्मेलनों में इनका परिचय देश के विभिन्न प्रान्तों की आर्य विभूतियों तथा पदाधिकारियों से होती रही है। वे स्वयं भी आर्य सम्मेलनों में भाग लिया करते थे।

इनकी मृत्यु का समाचार सुनकर नोबेल पुरस्कार विजेता श्री कैलाश सत्यार्थी जी, आर्य जगत् के मूर्धन्य विद्वान व सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान स्वामी आर्यवेश जी तथा देश की विभिन्न आर्य समाजों के पदाधिकारी गण शोक सन्देश भेजकर अपनी संवेदनाएं प्रकट की है।

श्रीनिवास जी की अन्त्येष्टि इनके पैतृक गांव हुमनाबाद में पूर्ण वैदिक पद्धति से की गई। सार्वदेशिक आ.प्र. सभा के मन्त्री तथा आर्य प्रतिनिधि सभा, आ.प्र.-तेलंगाना के प्रधान श्री विट्ठल राव जी, मन्त्री श्री वेंकट रघुरामुलु जी, वरिष्ठ उप प्रधान ठा. लक्ष्मण सिंह जी, श्रीमती वसुधा शास्त्री, उपप्रधान, श्री अरविन्द शास्त्री जी, वर्तमान मनत्री श्री हरिकिशन वेदालंकार जी, उप्रधान, श्री अशोक कुमार श्रीवास्तव, उपमन्त्री बसि रेड्डी जी, कोषाध्यक्ष श्री मल्लिकार्जुन जी, उपप्रधान डॉ.वसुधा-अरविन्द शास्त्री जी, उपप्रधान श्री शिवकुमार जी, श्री अमर सूर्वे, सहकर्मी, राघव रेड्डी, नरसिह्मा तथा हैदराबाद-सिकन्द्राबाद नगरद्वय की आर्य समाजों के पदाधिकारीगण भी श्री श्रीनिवास आर्य जी की अन्तिम यात्रा में सम्मिलित होने के लिए हुमनाबाद पहुँचे थे।

श्रद्धाँजलि

साधारण अधिवेशन प्रारम्भ होने से पूर्व सभा के प्रबन्ध अधिकारी श्री श्रीनिवास जी आर्य (खमितकर) का आकस्मिक निधन होने की वजह से उनकी स्मृति में श्रद्धाँजलि सभा आयोजित की गई थी जिसमें सभा के अधिकारियों सहित विभिन्न समाजों से पधारे आर्य समाज के अधिकारी व प्रतिनिधियों ने श्री श्रीनिवास जी के निधन के प्रति गहरा दुःख व्यक्त करते हुए दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करने की परमात्मा से प्रार्थना की। परिवारजनों को साहस व धैर्य प्रदान करने की भी प्रार्थना की। सभी आर्य समाजों के सहयोग से प्रतिनिधि सभा ने श्री श्रीनिवास जी के परिवार को रु.१,६२,००० की सहायता प्रदान की। स्व. श्री श्रीनिवास जी आर्य प्रतिनिधि सभा को, एक निष्ठावान कार्यकर्ता के रूप में गत ३४ सालों से सेवाएं प्रदान कर रहे थे। सभा की ओर से परिजनों को यह भी आश्वासन दिया गया कि परिवार के हर तकलीफ़ में तथा बच्चों की पढ़ाई में सभा पूरी तरह से सहयोग देगी। श्री श्रीनिवास जी अपने पीछे पत्नी, चार सुपुत्रों तथा एक बेटी को छोड़कर गए। विनम्र श्रद्धाँजलि।

శ్రద్ధాంజలి

ఆర్య ప్రతినిధి సభ అంతరంగ్ కమిటీ సభ్యులైన శ్రీ ఎస్.వెంకట రామరెడ్డి గారి తండ్రి గారు కీ॥ శే॥ సుతారి లక్ష్మారెడ్డి గారు శుక్రవారం 15 డిసెంబర్ 2023 రోజున పరమ పదించారు. వారికి ప్రగాఢ సంతాపం తెలియజేయు చున్నాము. శ్రీ వెంకటరామరెడ్డి గారు ప్రతినిధి సభ సభ్యులే కాదు దయానంద విద్యా సమితి కార్యదర్శి కూడా. దాదాపుగా గత 30 సంవత్సరాల నుండి ఆర్య సమాజానికి, విద్యా సమితి సేవ చేయుచున్నారు. ఆత్మీయ మిత్రులైన శ్రీ వెంకటరామరెడ్డి గారి తండ్రి స్వర్గస్థులు అవటం సమాజానికి పెద్ద లోటు. ఆర్య ప్రతినిధి సభ పక్షాన కీ॥ శే॥ లక్ష్మారెడ్డి గారికి ప్రగాఢ సంతాపాన్ని తెలుపుతూ వినమ్రుగా శ్రద్ధాంజలి ఘటించు చున్నాము. కుటుంబ సభ్యులకు ధైర్యం కలిగించుమని పరమాత్మునితో ప్రార్థించుచున్నాము.

విఠల్‌రావు ఆర్య, సభ ప్రధాన్

दिवंगत
श्री श्रीनिवास जी आर्य (खमितकर)
की सृमति में

देहावसान 18-12-2023

सभा की ओर से विनम्र श्रद्धाँजलि

आर्य प्रतिनिधि सभा आ.प्र.-तेलंगाना
की ओर से विनम्र श्रद्धाँजलि

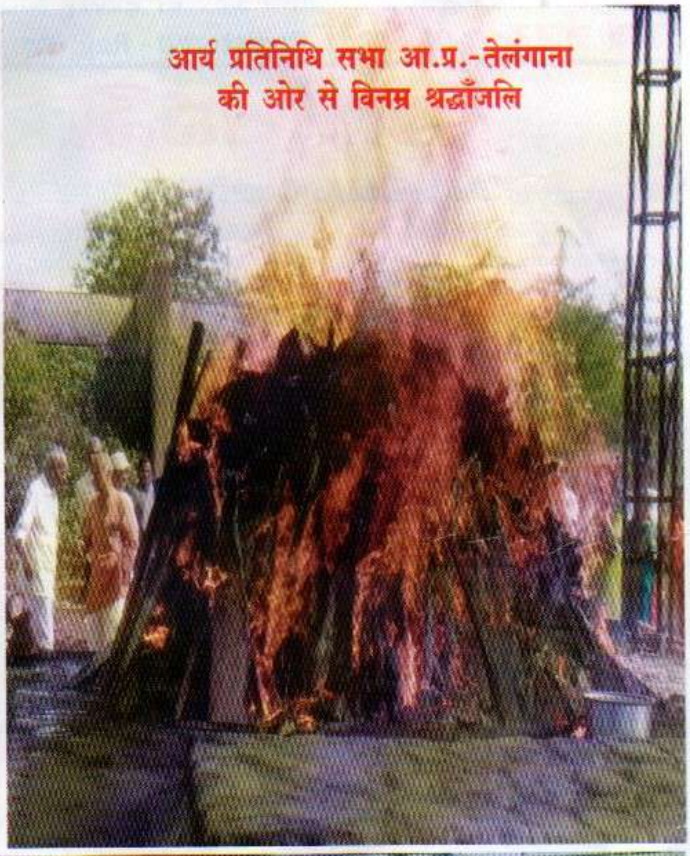

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान स्वामी आर्यवेश जी ने स्व. श्री श्रीनिवास जी के स्मृति में आयोजित शान्ति यज्ञ में भाग लेकर स्व. श्री श्रीनिवास जी को श्रद्धाँजलि अर्पित की। परिवार के सदस्यों के साथ स्वामी जी व सभा के अधिकारी

Date of Publication 2nd and 17th of every Month, Date of Posting 3rd and 18th of every Month
आर्य जीवन 03-01-2024 Registered - Reg. No. D/RNP/HCD-783/2024-26 RNI No. 52990/93

ఆర్య జీవన్

హిందీ-తెలుగు ద్విభాషా పక్ష పత్రిక
Editor : Sri Vithal Rao Arya, M.Sc., L.L.B., Sahityaratna.
Arya Pratinidhi Sabha A.P.-Telangana, Sultan Bazar, Hyderabad-500095.
Phone : 040-24753827, 24756983, Narendra Bhavan : 040-24760030.
Annual Subscription Rs. 250/- సంపాదకులు : విఠల్ రావు ఆర్య, ప్రధాన సభ.

आर्य समाज राष्ट्रपति रोड़, सिकन्दराबाद का चुनाव
आर्य प्रतिनिधि सभा के उपाध्यक्ष

ठा. लक्ष्मण सिंह जी की अध्यक्षता में सम्पन्न

माशेट्टी श्रीनिवास जी सर्वसम्मति से प्रधान निर्वाचित

उपप्रधान : श्री ज्ञानमोते धर्मवीर, मन्त्री श्री कन्दी विश्वनाथम्, उपमन्त्री : माशेट्टी शशीकान्त आर्य, कोषाध्यक्ष : श्री एन.विजय कुमार, पुस्तकाध्यक्ष : डी.बालसुन्दर राव, अन्तरंग सदस्य : पी.बालकृष्ण, बी.किरण, एन.दयाकर, सीतासदानन्द एवं पी.शशिकान्त सर्वसम्मति निर्वाचित हुए।

हिन्दी मिलाप

आर्य प्रतिनिधि सभा के चुनाव सम्पन्न

हैदराबाद, 26 दिसंबर-(मिलाप ब्यूरो) आर्य प्रतिनिधि सभा आंध्र-प्रदेश तेलंगाना, सुल्तान बाजार के चुनाव सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली के पर्यवेक्षक एवं चुनाव अधिकारी जितेंद्र पुरुषार्थी की देख-रेख में पं. नरेंद्र भवन में संपन्न हुए।

अवसर पर आंध्र व तेलंगाना के आर्य समाजों के प्रतिनिधि बड़ी संख्या में उपस्थित थे। चर्चा के पश्चात चुनाव सर्वसम्मति से कराने का निर्णय लिया गया। चुनाव में प्रो. विट्ठल राव आर्य को प्रधान पद पर तथा हरिकिशन वेदालंकार को मंत्री पर सर्वसम्मति से चुना गया। इसके अलावा उप प्रधान पद पर ठा. लक्ष्मण सिंह, बी. शिवकुमार, डॉ. चंद्रय्या, डॉ. वसुधा शास्त्री, डी. वेंकट नरसय्या, कृष्णा रेड्डी, अशोक कुमार श्रीवास्तव तथा माशेट्टी श्रीनिवास चुने गए। इसी तरह उप मंत्री पद पर पी. सत्यनारायण, बंडी किशन राव, नरेश कुमार बांसवाड़ा, रामचंद्र (जहीराबाद), एम. सुधाकर, आर. अशोक कुमार, जे. वसी रेड्डी व ठा. दिनेश सिंह का चयन हुआ। जी. मल्लिकार्जुप्पा को कोषाध्यक्ष व डॉ. विश्वश्रवाः को पुस्तकाध्यक्ष चुना गया।

विज्ञप्ति में बताया गया कि सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली के लिए प्रतिनिधियों का चुनाव भी सर्वसम्मति से हुआ। सार्वदेशिक प्रतिनिधि सभा के लिए प्रतिनिधि के रूप में प्रो. विट्ठल राव आर्य, हरिकिशन वेदालंकार, बी. शिवकुमार, वेंकट रघुरामुलू एडवोकेट, एन. अशोक कुमार एडवोकेट, ठा. लक्ष्मण सिंह, डॉ. वसुधा शास्त्री, रामचंद्र (जहीराबाद), बंडी किशन राव, डी. वेंकट नरसय्या, जे. वसी रेड्डी, अशोक कुमार श्रीवास्तव, जी. मल्लिकार्जुन, गोपाल रेड्डी (नलगोंडा) व डॉ. सी.एच. चंद्रय्या चुने गए। चुनाव अधिकारी जिलेंद्र पुरुषार्थी ने उपरोक्त निर्वाचित अधिकारियों के नामों की घोषणा की। अवसर पर सभा के प्रबंधक अधिकारी श्रीनिवास आर्य (खमितकर) के निधन पर श्रद्धांजलि सभा का आयोजन किया गया। अवसर पर सभी ने श्रीनिवास आर्य के निधन पर गहरा दुःख व्यक्त करते हुए दिवंगत आत्मा को शांति प्रदान करने की परमात्मा से प्रार्थना की। सभी आर्य समाजों के सहयोग से प्रतिनिधि सभा द्वारा श्रीनिवास आर्य के परिवार को आर्थिक सहयोग प्रदान किया गया।

आर्य प्रतिनिधि सभा आंध्र प्रदेश-तेलंगाना, सुल्तान बाजार के चुनाव में चुने गए पदाधिकारी।

THE VIEWS & THE NEWS PUBLISHED IN THIS ISSUE MAY NOT NECESSARILY BE AGREEABLE TO THE EDITOR.

Editor : Sri Vithal Rao Arya E-mail : acharyavithal@gmail.com, Mobile : 09849560691.

సంపాదకులు : శ్రీ విఠల్ రావు ఆర్య, ప్రధాన సభ, ఆర్య ప్రతినిధి సభ ఆ.ప్ర.-తెలంగాణ, సుల్తాన్ బజార్, హైదరాబాద్-95. Ph : 040-24753827, E-mail : acharyavithal@gmail.com
संपादक : श्री विट्ठल राव आर्य, प्रधान सभा ने सभा की ओर से आकृति प्रिन्टर्स, चिक्कड़पल्ली में मुद्रित करवा कर प्रकाशित किया ।
प्रकाशक : आर्य प्रतिनिधि सभा, आं.प्र.-तेलंगाना, सुल्तान बाज़ार, हैदराबाद-500 095. Narendra Bhavan Ph : 040 24760030.